

नेकी रीति सरलतासे दर्शाई गई है. जिससे ठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्ध का उपाय जान सकेंगे.

“जयतीति जैन” जैन शब्द जिनसे हुआ जिन शब्दकी धातु ‘जय’ है, जय शब्दका अर्थ जीतना, पराजय करना या तावेमें-कावूमें करना होता है. जीत शत्रुकी की जाती है. अपने सबे वर जालिम शत्रु राग द्वेष को जीते व कमी करे, सबे जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे व धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभव क्यों कि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्म सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आने मीमे प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू. साध्वियों लाखों श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे. इसके परम प्रभाव से, या रागद्वेष से, यह ‘जैन धर्म’ द्वितीय पदका धारण करते थे; अपार सुख (साधू) साधन कर सर्व

ते थे. जिसका मुख्य हेतु यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करने थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमें साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का वयान है, वहां फरमाया हैकि—

पठमं पोरिसौ सज्ज्ञायं, वीयं ज्ञाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि, चउत्थी भुजो विसज्ज्ञाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्ज्ञाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृत्तीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे) और चौथे पहरमें पुनः सज्ज्ञाय, यह दिनकृत्य, और रात्रीके पहले पहरमें सज्ज्ञाय, दूसरे में ध्यान, और “तइया निंदा मोक्खंतु” अर्थात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे, और चौथे में पुनः सज्ज्ञाय करे! यों दिन रात्रीके ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सही काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

नेकी रीति सरलतासे दरशाई गई है। जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्षु जन अपना इष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेंगे।

“जयतीति जैन” जैन शब्द जिनसे हुवा है, जिन शब्दकी धातु ‘जय’ है, जय शब्दका अर्थ जीतना, पराजय करना या ताबेमें-काबूमें करना ऐसा होता है। जीत शत्रूकी की जाती है। अपने सच्चे कष्टों और जलिलम शत्रू राग द्वेष का जीते व कमी करे, वोही सच्चे जैनी व जैन धर्मी हैं। राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र धर्ममें मतभेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्योंकि पानीसे वस्त्र जलता नहीं है। यह जैन धर्मका सत्य प्रभाव फक्त दो हजारही वर्ष पहले इस आर्य भूमिमें प्रत्यक्ष द्रष्टी आताथा; हजारों साधू, साध्वियों और लाखों श्रावक, श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक द्रष्टी जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुयायी थे। इस सम्प्रदायके परम प्रभाव से, या रागद्वेष रहित वीतरागी प्रवृत्तीके प्रभाव से, यह ‘जैन धर्म’ सर्व धर्मों से उच्च अद्वितीय पदका धारक था, बडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य करते थे; अपार श्रद्धा सिद्धियों का त्याग कर जैन भिक्षुक (साधू) बनते थे, और वीतराग प्रवृत्ती से आत्मसाधन कर सर्व इष्टकार्य सिद्ध करते थे, मोक्ष प्राप्त कर-

ते थ. जिसका मुख्य हेतु यह ही दिखता है, कि वो महात्मा सूत्रमें कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करने थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्ययनमें साधूके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया हैकि—

पढमं पोरिसी सज्ज्ञायं, चौथं ज्ञाण झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरि, चउत्थी भुजो विसज्ज्ञाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिले पहरमें सज्ज्ञाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहरमें भिक्षाचरी (भिक्षावृत्तीसे निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे) और चौथे पहरमें पुनः सज्ज्ञाय, यह दिनकृत्य. और रात्रीके पहले पहरमें सज्ज्ञाय, दूसरे में ध्यान, और “तइया निंदा मोक्खंतु” अर्थात् तीसरी पहरमें निद्रा से मुक्त होवे. और चौथे में पुनः सज्ज्ञाय करे! यों दिन रात्रीके ६ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययन में फरमाया हैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सट्ठी काएण फासइ॥
पोसह दूहउ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

हार आदी देने, मैं तथा नमस्कार सन्मान करने में सम्यक्त्व का नाश होता है! अनंत संसार की घृथी होती है!! —वगैरा उपदेश कर बाड़े बान्ध लिये? देखिये बन्धूओं! राग द्वेष जीतने वाले जिन देवके अनुयायि यों का उपदेश? ऐसी २ विपरीत परूपणासे इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये हैं, और एकेक की कटनी-सत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कयुक्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जानने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा बोलने लगे और कहानीयों रागणीयों कर प्रपदा को हँसादे वोही पण्डित राज कहलाये, जो तरतम योग से साधू बने वोही चौथे आरेकी बानगी बजे, जो ज्यूनी मुहपति पूजणी रक्खी या टीले टमके किये वोही श्रावकजी कहलाये, और विषय कपाय के पोषणमें ही धर्म माना! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवृत्तती हुई इन झुलक बातों परते ही विचारी ये कि जैनी इन को कहना क्या? लाला रण जीत सिद्धजाने कहाह—

जैन धर्म शुद्ध पाय के, बरने विषय कपाय॥

यद् अचमाहो रक्षा, जन्ममें लार्मी लाय॥ १

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणीमें भैसे(पाडे)जल

(वल) सरें? ऐसा आश्चर्य जनक बनाव वन ने का सब-
 व भैसे की पीठ पर लदेहुवे चुनेही का था !! तैसे ही
 जैन धर्म में रहे हुये जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त
 होते हैं, इतका सबव उनके हृदय में रहा हुवा विषय
 कपाय इर्षा रूप क्षार ही है !! तखेदाश्चर्य है की जैन
 धर्म जैसा सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय
 कपाय इर्षा रूप लाय (आग) शांत नहुड़ !
 हा इति खेद ! विषय कपाय राग द्वेष
 इर्षा रूप लाय बुजणे का शांत करने का उपाय
 ध्यानही है, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष
 था उसे लुप्त जैसा हुआ देख, ध्यानका स्वरूप सरल-
 ता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलगही होने की
 आवश्यकता जान यह ध्यानकल्पतरु नामक ग्रन्थ श्री
 उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तराभ्येनजी सूत्र, श्रीसुयडांग
 जी सूत्र श्री आचाराङ्गजी सूत्र और ज्ञानार्णव, द्रव्यसं-
 ग्रह, ग्रन्थ तथा कितनेक थोकडों के आधारसे स्व-मत्या
 नुसार बनाके श्री जैन धर्मानुयायी यों को समर्पण-
 करता हूँ और चहाताहूँ कि ध्यानकल्पतरु की शीत-
 ल छांव में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान से
 निवृत्त शुभ और शुद्ध ध्यानमें प्रवृत्त न कर, सबे जैनी
 वन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोगे ! और इष्टितार्थ सि-
 द्ध करने समर्थ बनोगे—वित्तेषु किमधिकं.

पनों सनी बांझी—अमोन ऋषि.

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र बंगोरा.

मालव देशके भोपाल शहरमें ओसवाल बड़े साथ कौंसटीया गोत्रकेसेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा घाईके कृंखसे 'संवत् १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलस' नाम दिया. और एक पुत्र हुये बाद हुलासा घाईका देहान्त होगया. फिर केवलचन्दजीने सं. १९४३ के चैतमें दिक्षा धारण कर पुज्य श्री काहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनी श्री गृध्राक्षपिजी महाराजके शिष्य हुये. औरज्ञानाभ्यास कर एक उपवाससे एकस उपवास तकच्छट घन्ट और ३०-३१-४१-५१-६१-६३-७१-८१-८३-९१-१०१-१११-और १२१ यहनपस्यातो छाछके आगरसे, और छे महीनेतक एकांतर उपवास बंगे यहाँतमीकरीहेतथ पूर्व, पंचाय, मालवा, गुजरात, मेवाड़, माण्ड दक्षिण बंगोरा बहुत देश स्फड़ये हैं.

सं० १९४४ के फागनमें महात्मा श्री निलोका ऋषिजी महाराजके पाटवी शिष्यश्री रुन ऋषिजी महाराजके साथश्रीकेवल ऋषिजी. इच्छा वर (भोपाल) पधार उमरक बरामे दो कौश म्येरी ग्राममें अमोलस चंद अरने मामाके पामथे, मुनीआगम मुन दर्शनार्थ गय

और वैरागी पिता को देख वैरागी बने. और तुरंत फा
 ल्गुन वद्य २को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये, पुज्य
 श्री खुब ऋषिजी महाराजके पास लाये. तपस्वीजी श्री
 केवल ऋषिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री अमोल
 ख ऋषिजीको अपने शिष्य बनानेकी नाखुशी दरशाइ, त
 वपुज्य श्रीके जेष्ठ शिष्य आर्यमुनी श्री चेना ऋषिजी महा
 राजके शिष्य अमोलख ऋषिको बनाये, थोड़ेहीकाल वा
 द श्री चेना ऋषिजी और पुज्य श्री खुब ऋषिजी का स्वर्ग
 वास हुवा और फिर थोड़े ही काल बाद तपस्वी जी-
 श्री केवल ऋषिजी एकले विहारी हुवे. तब नजीकमें वि
 चरते श्री भेरू ऋषी जी के साथ श्री अमोलख ऋषिवि-
 चरे. उसवक्त (१९४८ फालगुनमें) औस वाल ज्ञाती
 के एक पन्नालालजी ग्रस्यने १८ वर्ष की वयमे दिक्षा
 धारन कर श्री अमोलख ऋषिजीके शिष्य बनेथे. उनको
 साथ ले जावरे आये, वहां श्री— कृपा रामजी महारा
 ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरु वियोग से
 दुःखी हो रहेथे उनको संतोष ने श्री अमोलख ऋषि
 जी ने अपने शिष्य पन्ना ऋषिजी को समरपण किये
 देखीये एक येह भी उदारता. फिर दो वर्ष बाद दि
 क्षा दाता श्री रत्न ऋषिजी महाराज का मुकामला
 होते श्री अमोलख ऋषिजी उनके साथ विचरने लगे

इन महा पुरुषोंने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक ज्ञान तहामनसे ज्ञानका अभ्यास कराया सूत्रों की रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलख ऋषिजीने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये और-समझा रहे, हैं श्री अमोलख ऋषिजीके सवंत १९५६ के फागुन में औसवालसंचेतीज्ञात्ती के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुर्मास श्री अमोलख ऋषिजीका घोह नदीथा (तब जैन तत्व प्रकाश नामे बड़ा ग्रन्थ शिर्फ ३ महीनेमें रचाथा) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजीका चतुर्मास अहमदनगरथा. चौ मासे उतरे बाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगेकी मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै, मुजे संयमका सहाय देना तेराकृतव्यहै. तब अमोलख ऋषिजी श्रुतिगन्य सहिन श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लग. सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंचके अग्रह से बंबई हनुमान गली) में कियायहां जैन स्यानक वासी रत्न चिन्ता मणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ, और इस मंडलकी तर्पसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटसी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहां मोती ऋषिजी स्वर्गस्थ हुये. उस वक्त हमारे पिताजी श्री पद्मालालजी

कीमती कार्यार्थ वचंइ गंयथे, वहां महाराज श्री जीके दर्शन कर वीनंती करी के दक्षिण हेद्रावाद में जैनीयों के घर तो बहुत है, परन्तु मुनीराज का आगम बिलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो बड़ा उपकार होगा. यह बात महाराज श्रीको पसंद आइ. चर्तुमास बाद वचंइ से विहार कर. इगत पुगी पधारे, चर्तुमास किया, और यहां के श्रावक मूल चंदजी टांटिया वगैरे ने महाराज श्री की बनाइ 'धर्म तत्व संग्रह' नामे ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेट दी. वहां से विहार कर वे जापुर(औरंगाबाद)आये यहां के श्रावक भीखम चंदजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमें १२०० प्र. तो छपवाके अमुल्यभेट दी. वहां से जालणे पधारे और आगे विहार करने लगे तब सब श्रावकों ने मना किया की इधर आगे कोई साधु गये नहींहैं, आप पधारोगे तो बड़ी तकलीफ पावोगे. परन्तु श्री वीर परमात्मा के वीर मुनीवरो आगे के आगे बढ़तेही गये और श्रुथा त्रपादी अनेक आति कठिण पीरसह सहन करते, अनेकों को नवे भेषसे अश्चर्य उपज्याते अपुर्व धर्म का सत्य स्वरूप बताते सं. १०६३ जेष्ठ सुदी १२ शनीवार को चार कनान पावन करी. लाला नेतरामजी गान्धारी नारायणजीके दिये मकानमे चतुर्मास किया. चामासेमे

लजी सुलतानमलजीने 'भीमसेण हरीसेणकी' ढाळकी १००० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तेसेही हेद्रावाद ज्ञान वृद्धि खाताकी तर्फसे भक्तामरस्तोत्रकी १२०० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तेसेही सिकंदरावाद (हेद्रावाद) गुलाबचंदजी गणेशमलजी समदरीया तर्फसे श्री गणेशवाधकी १००० प्रत तथारामलाल पनालाल कीमतीजीकी तर्फसे २५० प्रत यों १२५० प्रत छपवाके अमुल्य भेट दी. तेसेही जैन शिशु बोधनीकी ५०० प्रत ज्ञान वृद्धि खातेकी तर्फसे. तेसेही लालजी कीमतीजी और घोड नदी (पुन) वाले कुंदन मलजी घुमर मलजी बापणा और सिकंदरावाद के गुलाबचंदजी गणेशमलजी समदरीकी तर्फसे यह "ध्यानकल्पतरू" ग्रन्थ की १२५० प्रत अमुल्य भेट दी जाती है. यों आज तक सुम्मार छोट्टीवडी १२५०० पुस्तकों तो अमुल्य भेट दी गई हैं. और सिकंदरावादके सेठ सागर मलजी गिरधारीलालजी तथा सहेंसमलजी जुगराजजी की तर्फसे "जैन तत्त्वप्रकाश" की दूसरी आवृत्ती की १००० प्रत और अन्य २ ग्रन्थों की तर्फसे १००० प्रत यों जैन तत्त्व प्रकाशकी २००० प्रत (छपरही है) और सिकंदरावाद के शिवराजजी रूगनाथ मलजी की तर्फसे मदन चरित ५७ खंड (१०८ ढाल) की १००० प्रत; और

पृष्ठ अंकी अक्षर	शब्द	पृष्ठ अंकी अक्षर	शब्द
७७ न २ दय	दहा	१९	इल्ल
८९ १ २ तज्ञान	मानज्ञान	" ११	पपे
" १७ वदरक	वदरक	१४० १२	तमश
" १९ धु	धु	१४१ १२	मुने
८८८ १० पानउ	पानउ	१४२ ९	मंश
९९ ७ गिना	गिना	१४४ २०	कुम्भ
९१ ९ कावू	कावू	१४५ ११	वक्
९२ २० अरेडा	अरेडा	१४७ २०	लवंग
९७ ११ अशुवि	अशुवि	१४८ २	असुर
९९ ११ ४४३	४४३	१५० ११	मोग
१०० २ मुर्त	मूर्त	" १८	वचार
१०१ १२ लारछेदी	लारछेदी	१५१ ७	आप
१०८ ९ वें	•	१५२ १०	पुस्तक
" १८ उग्रद्व	उग्रद्व	१५४ ९	नामने
१०९ नार महे	मेह	" २१	मुख
११० २ ५ सय (ता- पानी नही, मुटमा नही)	नगा भी नही मुटमा नही) दुमल माग	१५५ ७ १५७ नेट १५८ ५	दिश भवनी आपमें
१२१ ११ पहा	पहा	१५९ ४	सम्प
१३० ११ मविम्वर	मविम्वर	१६० १	निवा
" १४ अत्री	अत्री	" ९	दनि
१३१ ११ कलद	कलद	१६२ १८	और
" १५ वगंश	वगंश	१६४	वहन मगद
१३५ ९ मनि	मनि म्व ३		उदरका म्व
१३६ १४ हो	वह		र नही है
१३६ २० दो	मज्जा	१६५ ७	मुमर्तवा
१३८ २ लो	लो मीव	१६६ ९	(मिग)
" ११ मटके	मटके व तके	१६८ ५	मकन
१३९ १५ रात्र	मनन	१६९ ३	देव

पृष्ठ ओली अक्षर	शुद्ध	पृष्ठ ओली अक्षर	शुद्ध
२७२ नोट डसन	उत्तन	३१४ ९ अनन्द	आनन्द
२७३ १६ निशुद्ध	दिशुद्ध	३१५ १० "	"
२७४ २१ खेपत	क्षानि	३१६ ८ मय	मान
२७८ १७ विमनेर्क	विमनेर्मे	३१८ १४ जया	जय
२७९ नोट पागला	तथा पिगला	३२० ५ कीये	रिये
२८० १६ विमनेर्क	विमनेर्क	३२१ ४ चारित्र	चारित्र
२८३ ७ पान	पान	३२२ ९ पयः	पये
२८६ ७ विरूप	विद्रुप	३२३ नोट शिविही	शिविपावही
२८७ ९ सोलडड	साल अ	३२४ ६ दलमे	वालमे
२९० ७ विमल	विमल	३२८ २० पटला	पटला
२९२ ६ पिण्ड	पिण्ड	३२९ १ "	"
२९२ ८ सरीमे	सरीमे	३२९ २२ पटना	पटना
२९२ ९ पिण्ड	पिण्ड	३३० १७ मिष्य	मिष्या
२९६ नोट अट	आठ	३३१ ५ प्रदत्तमे	प्रदत्तमे
२९६ कादंड	दंडाकार	३३२ ७ क्रिय	क्रिया
३०८ १ करनेका	करनेकाउपाय	३३५ १२ वय	वय
३०९ १४ अदलोकन	अदलोकन	३३५ २ सधन	साधन
३०० नोट हमख	तो स्वभाव है	३३७ १० किंसा	किंसी
३०१ १ भय	भाव और भय	३३७ ३ टेडड	तेडेडे
३०१ ८ भास्ति	अस्ती	३३८ ११ जरांनी	जरांनी
३०२ ४ अदक	अदकल्प	३३८ १ परदुक्क	परदुक्के
३०२ ८ अमन्	अमन्	३४० ९ म्दम से	म्दभावसे
३०२ ८ मान	मान	३४१ १७ हमका	हमका
३०८ ११ आर	और	३४१ २१ हरा	हरा
३०६ ३ मरहल	मरमहल	३४२ ७ अदरी	अदरी
३०६ १० अम	अम	३४७ ९ परतली	परतली
३०७ ७ नदी	तडी	३४७ १४ टांक	टांक
३१० नोट रेकलेक	लेक का	३४७ ११ रेका	रेका
३११ २ कम्पल	कम्पल	३५० १ अरना	अरना

क्र.	पं. मं. ल.	अनुच्छेद	शब्द
१	२४३	१	१
२	२४४	४	४
३	२४५	४	४
४	२४६	४	४
५	२४७	४	४
६	२४८	४	४
७	२४९	४	४
८	२५०	४	४
९	२५१	४	४
१०	२५२	४	४
११	२५३	४	४
१२	२५४	४	४
१३	२५५	४	४
१४	२५६	४	४
१५	२५७	४	४
१६	२५८	४	४
१७	२५९	४	४
१८	२६०	४	४
१९	२६१	४	४
२०	२६२	४	४
२१	२६३	४	४
२२	२६४	४	४
२३	२६५	४	४
२४	२६६	४	४
२५	२६७	४	४
२६	२६८	४	४
२७	२६९	४	४
२८	२७०	४	४
२९	२७१	४	४
३०	२७२	४	४
३१	२७३	४	४
३२	२७४	४	४
३३	२७५	४	४
३४	२७६	४	४
३५	२७७	४	४
३६	२७८	४	४
३७	२७९	४	४
३८	२८०	४	४
३९	२८१	४	४
४०	२८२	४	४
४१	२८३	४	४
४२	२८४	४	४
४३	२८५	४	४
४४	२८६	४	४
४५	२८७	४	४
४६	२८८	४	४
४७	२८९	४	४
४८	२९०	४	४
४९	२९१	४	४
५०	२९२	४	४
५१	२९३	४	४
५२	२९४	४	४
५३	२९५	४	४
५४	२९६	४	४
५५	२९७	४	४
५६	२९८	४	४
५७	२९९	४	४
५८	३००	४	४
५९	३०१	४	४
६०	३०२	४	४
६१	३०३	४	४
६२	३०४	४	४
६३	३०५	४	४
६४	३०६	४	४
६५	३०७	४	४
६६	३०८	४	४
६७	३०९	४	४
६८	३१०	४	४
६९	३११	४	४
७०	३१२	४	४
७१	३१३	४	४
७२	३१४	४	४
७३	३१५	४	४
७४	३१६	४	४
७५	३१७	४	४
७६	३१८	४	४
७७	३१९	४	४
७८	३२०	४	४
७९	३२१	४	४
८०	३२२	४	४
८१	३२३	४	४
८२	३२४	४	४
८३	३२५	४	४
८४	३२६	४	४
८५	३२७	४	४
८६	३२८	४	४
८७	३२९	४	४
८८	३३०	४	४
८९	३३१	४	४
९०	३३२	४	४

दृष्टि ओरी अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ ओली अशुद्ध	शुद्ध
१११ २ ॥	॥	३५५ ७ अनन्द	आनन्द
११२ दलभ्रवण	आश्रव	३५५ ७ उत्पन्न	उत्पन्न
११३ ९ क्षयिक	क्षायिक	३५७ १६ समग्री	सामग्री
११४ १० कर्म	कर्म	३५८ ५ पदार्थ	पदार्थ
		३५८ ६ वनाता	वनता है
११५ ६ इन्द्र	इन्द्रा	३५९ २ उत्पन्न	उत्पन्न
११६ ९ असम्भूत	असम्भूत		

इन भिन्न-भिन्न अर्थों में, दी, पद वक्य, दिग्दृष्ट, कक्षर, और वि-
 र्णे (दिग्दृष्ट) की भी बहुत सी खोटों रह गई हैं। ऐसे ही भावों की भी
 गड़बड़ हो गई है, इस लिये पाठक गणों से नम्र विनम्री—विनम्री हैं कि
 इन्हें कृपे से धीरे, और चतुरता की रफ़ रक्ष न दें, अथवा वे लक्ष
 शर्तों से और गुणों गुणों ग्रहण करें। तो अवश्य ही लाभ प्राप्त
 करेंगे।

विज्ञेय-सिद्धि

अमोल्यवस्तु

क्र.सं.	वृत्त	विषय	पृष्ठ
११३	२२२	इतिहास विभाग	२२२
११४	२२३	इतिहास विभाग	२२३
११५	२२४	इतिहास विभाग	२२४
११६	२२५	इतिहास विभाग	२२५
११७	२२६	इतिहास विभाग	२२६
११८	२२७	इतिहास विभाग	२२७
११९	२२८	इतिहास विभाग	२२८
१२०	२२९	इतिहास विभाग	२२९
१२१	२३०	इतिहास विभाग	२३०
१२२	२३१	इतिहास विभाग	२३१
१२३	२३२	इतिहास विभाग	२३२
१२४	२३३	इतिहास विभाग	२३३
१२५	२३४	इतिहास विभाग	२३४
१२६	२३५	इतिहास विभाग	२३५
१२७	२३६	इतिहास विभाग	२३६
१२८	२३७	इतिहास विभाग	२३७
१२९	२३८	इतिहास विभाग	२३८
१३०	२३९	इतिहास विभाग	२३९
१३१	२४०	इतिहास विभाग	२४०
१३२	२४१	इतिहास विभाग	२४१
१३३	२४२	इतिहास विभाग	२४२
१३४	२४३	इतिहास विभाग	२४३
१३५	२४४	इतिहास विभाग	२४४
१३६	२४५	इतिहास विभाग	२४५
१३७	२४६	इतिहास विभाग	२४६
१३८	२४७	इतिहास विभाग	२४७
१३९	२४८	इतिहास विभाग	२४८
१४०	२४९	इतिहास विभाग	२४९
१४१	२५०	इतिहास विभाग	२५०
१४२	२५१	इतिहास विभाग	२५१
१४३	२५२	इतिहास विभाग	२५२
१४४	२५३	इतिहास विभाग	२५३
१४५	२५४	इतिहास विभाग	२५४
१४६	२५५	इतिहास विभाग	२५५
१४७	२५६	इतिहास विभाग	२५६
१४८	२५७	इतिहास विभाग	२५७
१४९	२५८	इतिहास विभाग	२५८
१५०	२५९	इतिहास विभाग	२५९



श्री जिनवर्येभ्यो नमः

ध्यानकल्पतरु

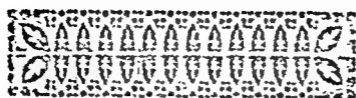
मङ्गलाचरणम्.

अपुतरं धम्ममुद्दिद्धत्ता, अपुत्तरं ज्ञापवरं
 गीयाइं: सु सुक्कं सुक्कं अपगांडं सुक्कं संविदु
 वेगं तव दानं वुक्कं ॥१॥ अनुत्तमं पम्मं
 नहेत्ती, अत्तेन कम्मं स विस्सोह इष्सा सिद्धिं गइ ताइ
 नयेत्त पत्ते, नयेत्त सौलगा य दंमयेत्त ॥२॥

मुद्राङ्कनम्

श्रमण भगवंत श्री महार्षि दृष्टान्त स्वामी,
 प्रधान-श्रेष्ठ धर्मिक प्रकाशक, सर्वोन्नत उज्ज्वलसे अर्था
 उज्ज्वल, दीप-मल रहित, ध्यान की ध्याया, कैसा
 उज्ज्वल ध्यान ध्याया, तो के यथा ब्रह्मांत-जैसा
 अर्जुन सुवर्ण उज्ज्वल होता है, पार्थ के फेज उ-
 ज्ज्वल होते हैं, नंग और चंद्रमा के वर्ण उज्ज्वल होते
 हैं, ऐसा जन्मे हुनसे भी अधिक उज्ज्वल, सर्व ध्यानों-

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विषाक के ३३ प्रश्नोत्तर	१५१	द्वितीयपत्र-निष्ठस्थान	२९२
चतुर्थपत्र-संसारान विषय लोक स्वरूप	१८१	तृतीयपत्र-स्थानस्थान	३०४
.....	१८१	चतुर्थपत्र-स्थानीय ध्यान	३०९
द्वितीय प्रतिशाखा धर्म ध्यानांक लक्षण	१९१	अष्टादश के १४ गंध	३२१
.....	१९१	चतुर्थशाखा शुरु ध्यान ...	३२३
प्रथमपत्र आज्ञाहर्षा	१९१	शुरु ध्यानांक गुण	३२३
द्वितीयपत्र-निसर्गहर्षा	१९१	प्रथमप्रतिशाखा शुरु ध्यान के पाये	३२७
तृतीयपत्र उपदेशहर्षा	१९४	प्रथमपत्र पृथक्-विवर्तक	३२३
चतुर्थपत्र सूत्रहर्षा	१९६	द्वितीयपत्र एकल विवरण	३२९
तृतीय प्रतिशाखा-धर्मध्यानीके		तृतीयपत्र सुखमकिया	३३१
आलम्बन ...	१९७	चतुर्थपत्र-समुष्टिभाक्तिया	३३१
प्रथमपत्र वापणा	१ : ८	द्वितीयपत्र शिवा शुरु ध्यान के-	
द्वितीयपत्र-पुष्पणा	२०५	लक्षण ...	३३२
तृतीयपत्र परिपक्वणा	२०६	प्रथमपत्र विवक्त	३३३
चतुर्थपत्र धर्मकथा	२०८	द्वितीयपत्र विउ मर्ग	३३५
चतुर्थप्रतिशाखा धर्मध्यानस्य अनु		तृतीयपत्र मर म्भित .	३३६
प्रेक्षा	२२०	चतुर्थपत्र अमोह	३३९
प्रथमपत्र-आनि-वानुप्रेक्षा	२२१	तृतीयपत्र-निशाखा शुरु ध्यान के	
द्वितीयपत्र असंरणानु प्रेक्षा ..	२२३	लक्षण ...	३४१
तृतीयपत्र-एक-वानुप्रेक्षा	२४१	प्रथमपत्र-शमा .	३४१
चतुर्थपत्र ससारानुप्रेक्षा ..	२४८	द्वितीयपत्र निर्लेभ	३४४
धर्म-ध्यानस्य पुष्प फल	२६४	तृतीयपत्र अर्थव	३४७
उपश.या शुद्ध ध्यान	२६७	चतुर्थपत्र मार्दन .	३४८
प्रथम प्रतिशाखा आत्मा	२७१	चतुर्थशाखा शुरु ध्यानीकी अनुप्रेक्षा	३५०
प्रथमपत्र बाहिर आत्मा	२७२	प्रथमपत्र अपाधानुप्रेक्षा	३५१
द्वितीयपत्र अंतर आत्मा	२७५	द्वितीयपत्र अज्ञान नुप्रेक्षा	३५२
तृतीयपत्र परमात्मा	२८५	तृतीयपत्र-अनन्यवर्गीयानुप्रेक्षा	३५५
पुष्प फलम्	२८५	चतुर्थपत्र विषम-ध्यानानुप्रेक्षा ...	३५८
द्वितीयशाखा उपस्थानधार	२८५	शुरु ध्यान के पुष्प फल-म	३६०
प्रथमपत्र पदस्थान	२८६	समाप्ति	

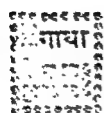


श्री जिनचरित्राय नमः

ध्यानकल्पतरु



मङ्गलाचरणम्.



अणुतरं धम्ममुद्दिग्धत्ता, अणुतरं ज्ञापयं
 सियाइः सु सुक्क सुक्क अपगंड सुक्कं सांविदु
 वेगं तव दान सुक्कं ॥१॥ अणुचरित्रं परमं
 महिमी, अस्सेत्त वम्मं स विसोह इषा सिद्धि गइ साइ
 नगं पत्ते, नगेण सीलण य दंमयेणं ॥२॥

सुखदाम्पत्य

धर्मण भगवंत श्री महावीर कृपामान स्वामी,
 प्रधान-श्रेष्ठ धर्मिक प्रकाशक, सर्वोत्तम उज्ज्वलते अती
 उज्ज्वल, दोष-मल रहित, ध्यान की ध्याया, कैसा
 उज्ज्वल ध्यान ध्याया, तो के क्या द्रष्टांत-जैसा
 अर्जुन सुवर्ण उज्ज्वल होता है, पार्षा के फेप उ-
 ज्ज्वल होते हैं, नंग और चंद्रमाके चरण उज्ज्वल होते
 हैं, ऐसा चन्दे इन्मने भी अधिक उज्ज्वल, सर्व ध्यानों-

में श्रेष्ठ, ऐसा सुकध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रशंसा
दसे; महा ऋषिस्वर, समस्त कर्मोंका नाश-क्षय कर
निर्मले हुये, जिससे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अ-
नंत चारित्र्य, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त
कर: जो आदि सहित और अंतरहित, ऐसी सिद्ध
गती, मोक्षगती, लोकके उपर, अग्रभागमें हैं; उ-
सको प्रशंसा करी. ऐसे श्रीमहावीर वृधमान स्वामी
जीकों मेरा त्रिकर्ण विशुद्ध त्रिकाल नमस्कार होवो !

भूमिका.



ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फलं चेति चतुष्टयम्.
इति सूत्रं समासेन, सविकल्पं निगद्यते.

अर्थ—ध्याता कहीये ध्यान करनेवाले. ध्यान क-
हीये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बैठना, ध्येय
कहीये किसी प्रकारका मनमें विचार करना; और
फलं कहीये, उस विचारका उस (ध्याता) को क्या
फल मिलेगा; इन चारोंही बातोंका, यथा धुद्धि
इस ग्रंथमें दर्शानेका पर्यन्त करूंगा. उसे पाठक
गणों, दत्त चित्तसे पढ़के. अशुभसंभव, शुभमें प्र-
वेशकर, इष्टार्थ सिद्ध करने समर्थ बनेंगे.

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातु "ध्ये" हैं, ध्येना अर्थ-
अंतःकरणमें विचार करना- सोचना ऐसा होताहै.
ध्यानके भेद शास्त्रमें इस प्रकार किये हैं.

शाखा.

सूत्र से कितं ज्ञाणे, ज्ञाणे चउविहे
पन्नते तंज्जहा, अट्ठे ज्ञाणे, रुद्धे
ज्ञाणे, धम्मं ज्ञाणे, सुक्खे ज्ञाणे. उव्वद मूल.

अर्थ-शिष्य सत्विनय प्रश्न करता है, कीगुरु म-
हाराज, ध्यानके भेद कितने हैं ?

गुरु-है शिष्य, ध्यानके चार भेद भगवंतने फर-
माये हैं, वेतेही में तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं. १ आर्त
ध्यान, २ रुद्ध ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और. ४ सुद्ध
ध्यान.

अंतःकरणमें विचार दो तरहका होता हैं. १
कभी अशुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थात्
अच्छा. अशुभ विचारको अशुभ ध्यान, और २

या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहते हैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद किये हैं, आर्त ध्यान और रुद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानके भी दो भेद किये हैं— धर्म ध्यान, और सुकृ ध्यान. इन चारोंहीका सविस्तार वर्णन, आगे अलग २ शाखाओंमें किया जायगा.

“ अशुभ ध्यान. ”

उपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्यक्त अशुभ ध्यानका वर्णन करता हूँ, क्योंकि मोक्षार्थी, अशुभ ध्यान का स्वरूप समझेंगे, तो उससे बचके, शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न बल हो सकेंगे.

प्रथम शाखा “आर्तध्यान”

इस जगत निवासी. सकृद्वर्ती जीवोंको, शुभाशुभ कर्मोंके संयोगसे, दुष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप), और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग, और दुष्टका वियोग, अनादि होना ही आया है; उनसे जो मनमें सकल विकल्प उत्पन्न होता है; उसे ही ‘आर्त ध्यान’ कहते हैं. जिनेश्वर भगवानोंने, जिसके मुख्य चार प्रकार कहे हैं.

प्रथम प्रतिशाखा 'आर्त ध्यानके भेद'

सूत्र अष्टे ज्ञाणे चउ विह, पण्णंते, तंज्जहा,
अमणुग संप उग संपउत्ते, तस्स विप्प
उगसत्ति, समणा एगययावी भवत्ति. मणुण संपउत्ते,
तस्स अवीप्प उग सत्ति समणा गएया अभवत्ति,
आयंक संप उग संपउत्ते. तस्साविप्पउंग सत्ती
समणे गएया वीभवत्ति. परिद्धुत्तीया काम भोग
संपउत्ते, तस्स अविप्पउग सत्ति, सनणे एगया भवत्ति.

उववाइ मूल.

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे, भगवंतने फर-
माया, तो कहतेहैं. १ अमन्योग (स्वराव) शब्दा-
दिक का संयोग होनेसे. विचार होवे की- इनका
वियोग (नाश) कब होगा: इसको अनिष्ट संयोग
नामें आर्त ध्यान कहना. २ मन्योग (अच्छे) श-
ब्दादिकका, संयोग (प्राप्ती) होनेसे, विचार होवे
की- इनका वियोग कदापी न होवो: इसे इष्ट
संयोग आर्त ध्यान कहना. ३ ज्वर, कुष्टादि अनेक
प्रकारके रोगोंकी प्राप्ती होनेसे. विचार होवे की-
इनका शिघ्र नाश होवो. इसे रोगोदय आर्तध्यान
कहना. ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ती होनेसे

अलंकृत, सुशोभित कर, मनहर रूप वणानेकी. इत्यादि तरह २ के काम भोगों भोगवने की. जो मोह कर्मके उदयसे अभिलाषा होतीहैं. तथा वरोंक्त पदार्थोंकी प्राप्ती हुई हैं. उसका उप भोग लेते, जो अंतःकरणमें, सुख, अहलाद उत्पन्न होता है; की में कैसे इच्छित सुखका भुक्ता हूं. या उनकी बारम्बार अनुमोदन करनेसे, अहा ! वगैरे स्वभाविक उद्गार निकलते, अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते, जो विचार होताहैं, उसे तत्त्वज्ञने आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार कहाहैं.

॥ पाठांतर ॥ किलेक आर्त ध्यानका दूसरा प्रकार “इष्ट वियोग” कहतेहैं, अर्थात् कालज्ञानादी ग्रंथमें, बताये हुये, स्वरादी लक्षणोंसे; या जोतिपादी विद्याके प्रभावसे, शरीरका वियोग स्वल्प (थोड़े) कालमें होता जाण, विचार उत्पन्न होय, की—हायरे अब मैं ये सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुई लक्ष्मीका, त्याग कर चले जाऊंगा ! तथा अपने सहाय्यक स्वजन, मित्रोंके वियोग से मूर्छित होगिर पड़े,

विलापात, आत्मप्रहार^१ या मृत्युका चिंतवन करे, गृह (घर) संपत्तिका किसीने हरण किया, अग्नी से जल (वल) गया. पाणीमें बहगया.—या डूब गया, पृथ्वी गत निधान (धन) विद्रुप^२ होके निकला. राजा पंचने हरण किया. व्योपारदीमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा, लभ्ना-दी कार्यमें अधिक व्यय करनेसे, अशक्तता दारिद्र्यतादी दुःख प्राप्त होनेसे, पश्चात्ताप करे; की हाय! हाय!! अब मैं क्या करूं वगैरे. इत्यादि अंतःकरणका विचारभी दूसरा आर्त ध्यान हैं. और इन्द्रियोंको पोषणे, अनेक वार्जिन्न— वारंगणा (नाटकणी)^३ पुष्प वटिका^४ अतर,—अवीरादी, पडरस्त भोजन, वस्त्र. भुषण. सयनाशन, वगैरे, विनाश हुये पदार्थोंका संयोग मिलाने, अनेक पापारंभ कार्यका चिंतवन करे, सोभी आर्त ध्यान.

तृतीय पत्र—“रोगोदय.”

३ “रोगोदय आर्त ध्यान सो”—(१)सब जीव

^१सिर छातीयादी कुटना. ^२गडा हुआ घन कोयले पाणी वगैरे द्रवों आता है. ^३नाचनेवाली. ^४चगीचा.

आरोग्य-सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनी कर्मोदयसे, जो जो रोग-असाताका उदय होता-हैं, उसे भोगवे विन छूटका नहीं. श्रीउत्तराध्ययनजी सुत्रमें फरमायहे की "कङ्काण कम्मान मोख्य अत्थी" अर्थात् कृत्य कर्मके फल भुक्ते विन छूटका नहीं. ७ मनुष्यके सरीरपर, साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रूम-बाल) के स्थानमें पोणे दो दो रोग कहते हैं. तो विचारीये यह शरीर कितने रोगोंका घर हैं. जहांलग सातावे दानिय कर्मका जोर हैं, वहांतक सत्र रोग दये (ठके) हुयेहैं. और पापोदय होतें, कुष्ठ (कोड), भगंदर, जलंधर, अर्त्तासार, श्वाश, खास, ज्वरादि, अनेक उद्वर्त्तीकार रुद्वर्त्तीकार से भयंकर रोग उत्पन्न हो, पीडा (दुःख) देंतें हैं; तब चिन आकुल व्याकुल हो, अनेक प्रकारके सकल्प वि-

७ कृतकर्मों क्षयो नास्ती, कल्प कोटी जनैर्गि.

अदय मेव मुक्तय्यं, कृत्कर्ममुधामुभं.

१३२००००००० इतने बौद्धा एक कल्प किया जाता है
ऐसे लोगों कल्पमेंही किये हुये कर्मका एक भागवे विन ९
का नहीं होता है !!

कल्प उत्पन्न होतेहैं. सो तीसरा आर्तध्यान. (२) और उन रोगोंका निवारण करने, अनेक औषधोपचार के लिये; अनंत काय, एकेंद्रीसे लगा पंचेंद्रीय तक जीवोंका, अनेक तरह, आरंभ, सभारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका, अंतःकरणमें विचार होवे; शिघ्रतासे उनका नाश करने चटपटी लगे; उनकी हानी बृधीलें हर्षशोक होय, है प्रभू ! स्वपनांतरनेंभी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभीलापा होवे, सो तीसरा आर्त ध्यान.

चतुर्थ पत्र--“भोगिच्छा.”

४ “भोगिच्छा आर्तध्यान” सो—१ पांच इन्द्रि-
सम्बन्धी काम भोग० भोगवणे की इच्छा होय
अर्थात् श्रवणेंद्री (कान) से. राग रागणी, किन्नरीयोंके गायन, और वाजिंत्रोंका मञ्जुल राग, सु-
ननेलें, चक्षुरेंद्री (आँख) से नृत्य (नाच) पोडरा

अन्य इंद्रियोंमें, कान और आँख यह दो इंद्रियकारी हैं अ-
र्थात् शब्द सुनना और रूप देखना यह दो काम देती हैं.
और, घ्राण. रस, स्पर्श ये तीन भोगी हैं अर्थात् गंध. स्वाद.
और सत्तादिका उन भोग लेनी हैं.

श्रृंगारसे विभूषित स्त्री पुरुष, वर्गाचे, आतसबाजी (दारु) के ख्याल, मेहल मंडपोंकी सजाइ, रोशनाइ, वगैरेकों देखनेमें, घ्राणेंद्री (नाक) से, अतर पुष्पादी सुगंधमें, रसेंद्री (जिभ्या) सें, पट रस भोजन, अभक्ष भक्षणमें. और शयनासन, वस्त्र भूषण, स्त्रीयादिके विलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही बनारहो. तथा में बड़ा भाग्यशाली हूं, के मुजे इच्छित सुखमय, सर्व सामग्री प्राप्त हुईहैं, वगैरे खुशी माननी. सो भोगिच्छा आर्त ध्यान. (२) और भोगांतराय कर्मोंदयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ती नहीं हुई; अन्य राजे श्वर्य, या इन्द्रादिकको, श्रद्धी सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वारा श्रवण कर, आपको प्राप्त होनेकी अंतःकरण मे अभीलाषा करे, की है प्रभु! एकादा राज्य मुजे मिल जाय, या कोई देव मेरे स्वार्धान (वत्त) हो जाय, तो में भी ऐसी मोज मजा भुक्त के मेरा जन्म सफल करूं. जहां तक ऐसे मुख मुजे न मिलें, वहां तक में अधन्य हूं. अपुन्य हूं. वगैरे विचार करे, (३) और तप, संयम, प्रत्याग्यान (पञ्चगवाणा) दी करणी कर, नियाणा (नि-

श्रव्यात्मक वांछा)* करे, की मेरी करणी के फलसे मुझे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ति होवो, (४) और अपनी करणीके प्रभावसे आशीर्वाद दे, अन्य स्वजन मित्रादि कों, धनेश्वरी सुखी करनेकी अभीलाषा करे, (५) और अपने स्वजन मित्र या पड़ोसी कों सुखी देख, आपके मनमें झू-रणा करे, की सबके बीच मेंही एक दरिद्री कैसे रहगया! वगैरे. इत्यादी विचार अंतःकरण में प्रवृ-त्ते सो आर्त ध्यानका चौथा प्रकार जाणना.



द्वितीय प्रतिशाखा. 'आर्तध्यानके लक्षण.'



अष्ट स्तणं ज्ञाणस्त, चत्तारिलखणा, पन्नंता तंज्जहा, कंदणया, सोयणया, तिप्पणया, विलवणया.

उदवइ मूय.

अस्यार्थः—“आर्त-ध्यानीके चार लक्षण” सो

‘दशा भुत्तकंय सुत्रने, नियणें दो प्रकारके फरमाये हैं—
१ भवनेक सो, संदुर्ग भवनेक चळे एमा निदान करे, जैसे नागयण, बामुदेव पदके नियणेंसे होतैं, वनकों वन प्रत्या-

१ अक्रांद रुदन करे. २ शोक (चिंता) करे. ३ आंखोंमें आंशू डाले. ४ थिलापात करे.

आर्त ध्यान ध्याता कौं बाह्य चिन्होंसे, पह-
चाननेके लिये, भगवान्में सूक्ष्म, ४ लक्षण फरमा
ये हैं; सो अनिष्टका संयोग, इष्टका वियोग, रोगा-
दी दुःखकी प्राप्ति, और भोगादी सुखकी अप्राप्ति;
यह चार प्रकारके कारण निपजनेसे, सबकी जीवों
को कर्मोंकी प्रचलना से स्वभाविकही चार काम
होते हैं.

प्रथम पत्र "कंदणया"

१ कंदणया=अक्रांद रुदन करे. की हाथरों
में मुमंयोगका नाश हो, ऐसेक संयोगकी प्राप्ति क्यों
होती है? हा देव! हा प्रभू!! इत्यादि विचार उ-
द्भवनेसे, अग्राट् शब्दसे रुदन करे.

द्वितीय पत्र "मायजया"

२ मायजया=मांघ चिंता करे, कयात्से हाथ

ध्यान कल्प न होवे. और २ वस्तु प्रत्यक्ष में दिखी वस्तु
प्राप्ति का निदान करे, अंगे दीपदीप्ति, इति वस्तु न होवे यत्
यह सम्यक्ता वस्तु न होवे.

धरे, नीची द्रष्टीकर सुन्नमुन्न हो वेठे, पृथ्वी खने (खोदे) न्नण तोडे, वावला जैसा वने, तथा मुर्छित हो पडा रहै.

तृतीय पत्र "तिप्पणया"

३ तिप्पणया—*आँखोंसे आश्रूपात करे, वातर में उत्त वस्तुका स्मरण होतेही रो देवे. उँड़े निश्वास झाले.

चतुर्थ पत्र "विलवणया"

४ विलवणया—विलापात करे. अंग पछाडे. ज्हदयपे, सिरपे, प्रहार करे; बाल तोडे, हाय ओय जुलून हुवा, गजव हुवा, बडा जवर अनर्थ हुवा, बगैरे भयंकर शब्दोच्चार करे, और क्लेश टंटे, झगडे, करे, तथा दीन दयामणे शब्दोच्चार करे. बगैरे सब आर्त ध्यानीके लक्षण जाणना.

अश्लेष्माश्रुवाध वैमुक्त, प्रेतोभुक्तं यतोऽवशः

अतो नरो दितव्यांहि, क्रियाः कार्याः स्वशक्तिः.

मरने वालेके पीछे उसके स्वजन न्तेही रुदन करके, अश्रु और श्लेष्म डालते हैं. उसे वो मरने वाले खाते हैं, ऐसा मिताक्षर ग्रंथमें कहा है.

आर्तध्यानके “पुष्प और फल”

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहती है. अ-होनिश उधरही लक्ष लगा रहता है. जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होता है, हरकत पडती है. धर्म करणी संयम तपादी कर केभी *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त कर सके नहीं हैं.

*जंबू द्वीपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कलावति विजयकी, पुंडरी राजध्यानीके, पद्मनाभ राजाके. कुंडरिक कुवरने दिसा धारण करी. पुंडरीक कुंवरको राज प्राप्त हुआ. भइको राज्य सुख भोगवने देख कुंडरिक का मन ललचाया. और गुरुका संग छोड मेहलके पीछेकी आशोक वाडीमें गुप्त आके बैठे. माछी-से खयर मिलनेही पुंडरिक राजा तुने भाइके दर्शन करने आयें. और मुनीका चित उदास देख पुत्रनेसे उनने राज वंशवकी परसंम्या करी, मुनीका मन चलिता देख, राजा अपने बह्म भूषण उतार मुनीको दिये और मुनीका उतारा हुवा वेश राजा धारण कर गुरुजीके दर्शन करने चले. तीन दिन उपवाससे गुरुजीको भेट, लुखलम, सुखसुख शुद्ध अहार भोगवनेमें, अत्यंत पीडा(दुःख) हुवा और आयुष्य पूर्ण कर स्वार्थ सिद्ध विधानमें देवता हुये. पीछेसे कुंडरिक राज वेश धारण कर राज्य सुख भोगनेमें अत्यंत लुब्ध हुये. तारदबदनेके दिये माम मदिरादि अप्रशक्ता भक्षण करनेसे, अत्यंत असा-य वेदना उत्पन्न हुई. तीन दिनमें. आयुष्य पूर्णकर भोग बिन भोगवेश परके सान्धी नई गये.

अग्यंठ पुरे पुंन्य पांते हुये विन तो. इष्ट
वस्तु की प्रार्त्ता होना, और स्थिर रहना होती
नहीं सक्ता है: जो अप्रार्त्ता में, या प्राप्त हो के
नाश होनेसे, उस वस्तुके लिये दुर २ के मर्त्ते
हैं: उनका कुच्छर्भी कार्य न होता है. उलट, न-
मीराज ऋषिके परमाये प्रज्ञाणें "कामे पथ व मा-
णा, अकामा जंति दुर्गर्ह" अर्थात्-अप्राप्त हुये-
अनमिले कामभोगोंकी प्रार्थना (चाञ्छा) करना
हुवा, कामभोग विन भोगवेड, वो मरये दुर्गती
(खराब गति नर्क तिर्याचा दी) में जाता है.
और कदी किंचित् पुन्योदयसे मनुष्य गति पाया
तो दुःखी, दरिद्री, हीन, दीन होवे: और जो क-
दापी, देवता हो जाय तो "अभोगीया, देव हो
सदा स्वामीके हुक्मार्थीन रहके अनेक कष्ट भो-
गते हैं. मालककी खुशी में अपनी खुशी मना
नी पडती है. भोगांतराय कर्मोदयसे, प्राप्त हुये
पदार्थोंका भी भोग न ले सक्ता है: अन्यके भोग

*नाकर देव श्यामीके लिये विमाण दशावे, या उडावे, गन्दाके
देवअश्वादि पशुका रूप बनाके सारी देवे सो अभोगीया देव.

सुख देख झुरना पड़ता है. आर्त ध्यान ऐसी प-
 की मोहद्वत करता है, की भवांतरोकी श्रणियों
 (भव-भ्रमण) में साथही घना रहता है; प्रीती
 नहीं तोड़ता है, (२) और आर्त ध्यानी प्राप्त हुये भोग
 सुखपे अत्यंत लुब्ध (ग्रही) होता है. (देवादिक
 के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता है)
 जाणें ऐसी वस्तु मुजे कहींभी न मिली थी, ऐसा
 जाण, उसको क्षिणमात्रभी अलग नहीं करता है.
 ऐसी अत्यंत अशक्तताके योगसे, इस भयमें सूल
 सुजाक, गर्मी, चितभ्रमादि अनेक रोगोंसे पीडित
 हो, औषध पथ्यादीमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ
 भोगव नहीं शक्ता है. घरमें रही हुई सामुग्रीयोंको
 देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसे कब छुट्टे,
 और इनका भोग लेवूं. ! !

(३) औरभी आर्तध्यानीकों, जो वस्तु प्राप्त हुई
 है, उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख,
 उसे प्राप्त करनेकी अभीलापा होती है; यों
 उद्योत वस्तुओं भोगवनेकी अभीलापही अभी-
 लापा में, उसका जन्म पूरा हो जाता है; वृधवस्था

प्राप्त हो जाती है, तो भी इच्छा-त्रण्णा त्रस्त नहीं होती है. भृगुही ने कहाहैं की—“स्त्रुण्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा” अर्थात् वय जीर्ण [वृध] होगइ परंतु तृण्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. क्यों कि इस श्रेष्ठी में, एकेक सैं अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही जीवकों एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं शक्ते हैं. प्राप्त हुये विन, तृण्णावंतकी तृण्णा भी शांत नहीं होतीहै. और तृण्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता हैं. इस विचार सैं निश्चय होता है की, आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण हैं. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्यों कि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है, जिससे उसके वज्र (चीकणें) कर्म बंधते हैं. वो कर्म फिर दुर्गतीयों में, ऐसे दुःख दाता होयंगे की, रोते २ भी नहीं नृटेंगे. ऐसा विचार, सम्यक द्रष्टी श्रावक साधू इस आर्तध्यानका त्याग कर, सुखी होनेका उपाय करे.

यह आर्तध्यान सकर्मी जीवोंके साथ अनादी

मैंमेंही आनंद (मजा) मानते हैं. उन कृकर्मोंके आनंदसे, जो अंतःकरणमें विचार होता है, उसे तत्त्वज्ञ पुरुषोंने रोद्र-भयानक ध्यान फरमाया है. इसके मुख्य चार प्रकार करे हैं.

प्रथम पत्र—“हिंशानुबंध.”

१ “हिंशानुबंध रोद्र ध्यान” सो—

संछेदनेर्दमनै ताडन तापनैश्च,

बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;

यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,

ध्यानंतु रोद्र मित्ती तत्प्रवदन्ति तद्वज्रः १

शाबर धर्मशूत्र.

अस्यार्थम्—छेदन, भेदन, ताडन, तापन,—करना. बन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना कृष्ण करना, इत्यादि कर्मोंमें जिसका अनुराग (प्रेम) होवे, ओर यह कर्म देख जिसको दया नहीं आवे, सो हिंशानुबन्धी रोद्र ध्यान.

(१) ‘दुःख किसी भी प्रिय नहीं है’ बेचारे जीव कर्माधिनासे, परार्थीनता, निराधारता, अ-

रमर्थता पाये हैं; होन, दीन, दुःखी हुये हैं. एकें-
 द्रीयदी अवस्था प्राप्त हुई हैं. अहो निश सुखके
 इच्छक हैं; और यथा शक्त सुख प्राप्तीका उपाय
 करने खपते हैं, उन बेचारे जीवोंको, अर्थ (मत-
 लवसें) अनर्थ (बिना कारन) दुःख देना. सताना,
 या उनको दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना,
 तो रौद्र ध्यान, एकेन्द्रियसे लगा पचेन्द्रिय जीव
 पर्यंत कीर्त्तीभी जीवोंको, या जीव युक्त किसीभी
 पदार्थोंको, स्वयं अपने हाथसे, तथा पर दूसरेके
 हाथसे, प्राण रहित करते देख, टुकड़े २ करते
 देख, लोहकी श्रांखल बेडीमें बन्धनमें डालते देख,
 रस्ती सूत शणादिक से बांधते देख, कोटडी
 भूँवारे (तल घर) करागृह (कंदी खाने) में, क-
 च्च किये देख, करण, नाशीका, पूँछ, सींग, हाथ
 पांव, चमडी, नख, वगैरे किसीभी अंगोपांग का-
 छेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेमें बेचारे जी-
 वोंका, वध करते समय, उनका अक्रांद श्रवण कर,
 उनके अंगके टुकड़े तडफडते देख, वगैरे अनेक
 तरह, जीवोंको दुःख देते, या वध करते देख, आ-

नंद माने, की बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहीथा. इसे मारनाही चाहिये; बंधनमें डालनाही चाहिये; फांसी, सूली, देनाही चाहिये; बडा जुलमी था. बचता तो गजब कर डालता, पाप कटा, मरगया, पृथ्वीका भार हलका हुवा ! वगैरे २ शब्दोचारकरे, आनंद माने, तो हिशानुबन्ध आर्त ध्यान.

(२) औरभी हाहा ! यह महेल, मंदिर, दंगला, हाट-दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तीरस्थंभ, या मृत्तिका पापाणादिकके खिलोने, मूरती, भंडोपकरण (बरतन) वगैरे, बहुत अच्छे बने, अच्छा रंग, कोरणीयादि कर, सुशोभित किया; शाबास कारीगरकों पूरा शिल्पवेताथा, की जिसने ऐसी मनहर वस्तु बनाइ. ऐसेही कूप घावडी, नल, तलाब, होद, कुंड, झरणा, झारी, लोटा, गिलाश, कलशा, वगैरे बहुतही अच्छे मनहर बने हैं. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधी पाणी हैं. कैसा उमदा फुवारा छूटता हे. कैसा उमदा छिडकाव हुवा हैं. चूला, भट्टी, अंजन, मील, दीवा, पिलशोद. हंडी गिलास. झुमर. चीमनी. वगैरे

बहुतही अच्छे सुशोभित हैं, क्या उमदा झगमग रोशनी होरही हैं, क्या रंगी बेरंगी आतशवाजी (दारुके ख्याल) लूट रहे हैं. क्या धूपकी सुगंधी मयमया रही हैं. क्या शीतल सुगंधी हवा आती है. क्या उमदा पंखा पंखी चल रहे हैं. केला झूला घूमता है, क्या मज्जुल वाजित्रोंका नाद है. क्या उंचे २ विचित्राकार वृक्षोंका समोह सोभ रहा है. यह झाड़ों काटके प्रशाद, स्थंभ, पाट, बगैरे बनाने योग्य है, यह फल बडे़ मिष्ट हैं, भक्षण करने योग्य हैं गुण करता है; शाख बडा़ स्वादिष्ट बना. क्या लीली २ हरीयाली छा रही हैं, इसे देखनेसें बडा़ आनंद होता है. क्या मनहर हार तुरें बनाये, औषधियां कंद मुलादिक पोष्टिक स्वादिक कैसे अच्छे हैं. यह कीडे़, खटमल, डंस, मच्छर, परले के जीव हैं, इनको जलरही मारना. जलचर मच्छादि भूचर गवादि, वनचर शुकरादी, खेचर, पक्षी आदी, पंचनादी कर भक्षणें योग्य हैं. यह अश्व गजादी की कैसे सजाइ सजी हैं. शैव्य न त्रंका कटा करने जैसी हैं, बहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंको पीजरेमें रखे हैं. अजायब घरकी

अजय छटा हैं, मुशसे रोगोत्पत्ती होती है. यह मारने योग्य हैं. सर्प बिच्छूवादि विपारी जीवोंको अवश्य मारना, बड़ा पुन्य होगा, सिंहकी शिकार क्षत्रीयोंको अवश्य करना चाहिये. केसा सूर सुभट हैं, एक पलक में हजारोंका संहार करता है. इत्यादी विचारको हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान कहना. और भी अश्वमेध यज्ञ, घोड़ेको अग्निमें होमनेसे; गौमेध-यज्ञ गौ का, अजामेध बकरेका, और नरमेध मनुष्य का, अग्निमें होम करने (जलाने) से, बड़ा धर्म होता है, स्वर्ग मिलता है. यह विचारभी रौद्र-ध्यानका हैं. कित्नेक पापशाम्रके अभ्यासी कित्नेक जानवरोंके अंगोपांग मांस; रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादी सेवनसे गंग नास्ती मानते हैं. कित्नेक फिडा निमित्त कुत्तेआदी शिकारी जानवरोंसे बेचारे गरीब पशु पक्षीयोंको पकड़ाके मजा मानते हैं. कित्नेक बंदर गिल्ल आदी जीवोंके पास नृत्य गायनआदीके

ॐ प्रेम गंगके प्रसर होने पावे याये मूत्रे (पुत्रे वंशिर)

पार. उग्र पात्रिक को चेनात है गंगमें बचाने उग्रहार काम

६ उग्र मूत्रके उग्र धारने है यह बड़ी भ्रंशाने दशा है.

ख्याल तमाशादेखनेमें मजा मानते हैं. कुर्कट, भेसैं, भेंडे या मनुष्यादि की लड़ाइ देख मजा मानते हैं. सो भी हिंशानुबन्ध नामे रौद्रध्यान हे.

कित्नेक जीवोंके संहार के लिये, सत्घनी, (तोप) घंड़क, धनुश्य-त्राण, खड्ग, कटार, छुरी, चहू आदीका संग्रह करते हैं: या शस्त्र देख, जीवों के संहारकी इच्छा फेरते हैं. कित्नेक घट्टा, घट्टी, हल्ल, बखर, कुदाली, पायडी जखल, मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, बगैरेका संग्रह करते हैं. तथा इन को देख संहारकी इच्छा करते हैं. हाथ में आये चलानेकी इच्छा करते हैं. खाली चलाके देखते हैं, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

औरगी किल्लीका बुरा चिंतवना, अपनेसे अधिक रूपवान, धनेश्वरी, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बटुल परवारी, सुखी देखके ईर्ष्या करे, उनको दुःख होनेका विचार करे, की इस के पीछे मुजे कोइ नहीं पूछना हे, यह मेरे सुखमें या लाभमें हरकत कर्ता हे. मुजे हरबक दशाता हे सताता हे, यह कब मेरे और पाप कटे, बगैरे विचार करे सो भी

हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

और पृथव्यादि छेही काय के जीवोंकी हिंशा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगैरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही औपधीयों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, विभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त, हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यस्त्रीकी संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगाबाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंशानुबन्ध रौद्रध्यानका विशेष वास होता है.

तैसेही हिंशासे निपजती हुई वस्तु, जैसे—
१ गिरनीमें पीशा आटा, २ चीनी सक्कर, ३ हंडी या हार्थी दांत के चूड़े, वगैरे, ४ कचकड़ेकी बनी वस्तु, ५ पांखोंकी टोपीयो वगैरे, ६ चमड़ेके पूठे वगैरे,

१ गिरनीके आटेको बरोबर जमाके चपर सक्का सुरसुरा देग्वनेमे हलते चलते बहुत जीव दिखते हैं. २ चीनी सक्करमे हड्डियोंका यूग विशेष होता है, और गायके रक्तसे शुद्ध करते हैं. ३ हार्थी दातके लिये ७००००० हाथी फ्रान्स देश में दरसाल मार जाते हैं. ४ कचकड़ेको गन्ध पानीमें डुबाके मारके उसके चमड़ेकी जो वस्तु बनाते है उस कचकड़ेकी कहने हैं. ५ जीवने पक्षियोंकी पांखो श्रद्धसे बरसाद लेने है, वो टोपी वगैरेपे लगाते हैं. ६ जीवने पशुका चमड़ा निकालते हैं किन्तु रुग्णान चमड़ेके लियेही बिषादी प्रयोगसे पशुको मारते हैं किन्तु पोंके पूठे, नोवन नगारे, वगैरे बनते हैं.

७अंग्रेजी दवाइयों, ८ सावन मेणवत्ती, ९रेशमी कपड़े, १०खराब केदार, ११चरवीका घृत (घी) वगैरे हिंशक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हैं, वोभी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है.

ऐसेही घोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार घाजरीके भुट्टे, सुला अनाज व औपधी, बिना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा मानने-से भी, हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है, क्यों कि इनमें त्त जीवोंका विशेष संभव है.

महाभारत संग्रामोंके इतिहास कथा पढ़ते सुनते जो उत्तकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंशानुबन्ध रौद्रध्यान.

७अंग्रेजी दवाइयोंमें जानवरोंके मांसका अर्क व दालका भेल होना है काडलीवर आइल यह मच्छीका तेल होना है, ऐसी बहुतसी हैं. ८सावू मेणवत्तीमें चरवीका भेल होता है ९किल्नेक केदारमें मांस के छेने होते हैं. १०रेशमी कोंडिको गरम पाणोंसे मार रेशम छेने हैं. ११किल्नेक घी (घृत) में भी चरवी का भेल आता है. ऐसी अन्नवारोंमें बहुत सखरें प्रगट हुई हैं, और उन्हे पढ़के वरोक्त वस्तु छोड़ने नहीं हैं उन्हे अपेक्षमें कहना.

इत्यादि हिंशानुबन्ध रौद्रध्यानका बहुत व-
यान हैं, सबका मतलब इजाही है की, किसीकों
भी दुःख देनेका विचार होवे या दूसरे के बधसे व-
स्तु बनी उसकी अनुमोदना करे वोही हिंशानुबन्ध
रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र--“मृषानुबन्ध.”

२ “मृषानुबन्ध रौद्रध्यानः”—



असत्य चातुर्यं बलेन लोकाद्वितं ग्रहीष्यामि
बहु प्रकारं; तथा स्वमतक पुगकराणि, कं-
न्यादि रत्नानीच बन्धुराणी ॥ १ ॥ असत्य
वागवचनाया निजानंत प्रवर्तय त्यत्र जनं
वराकम्, सद्धर्म मार्गं दासिर्वर्तनेन मदो-
द्धतोयः सहि रौद्रधामा ॥ २ ॥

श्रीकान्तः

अर्थ—विचार करे कि मैं असत्यतासे चतुर्ता
करके, मेरे कर्मोंको प्रगट न होने देते, अनेक प्र-
कारसे लोकोंको ठग कर, मेरा मतलब पूरा करूँ

मन कल्पित, अनेक शास्त्र दया रहित रचकर, मन माना मत चलावूं, लोकोकों वाक्य चातुरीसे मोहित कर, उनके पाससे सुन्दर, कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह, (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं. इत्यादि असत्य विचार, जिसके अंतःकरणमें होवे, उसे मदोद्वत मृषानुबन्ध रौद्रध्यानका मंदिर (घर) समजना चाहिये.

मृषा=नहीं रक्खा, अर्थात् झूटने, जक्तमें घुरा पदार्थ कुछ वाकी रक्खा नहीं; सब उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूटा पना हैं, और छोटे, बड़े, सब झूटकों खराब समजते हैं, क्यों कि झूटा कहनेसे, सब चिडते हैं; तो भी आश्चर्य है की फिर उसे नहीं छोड़ते हैं, देखिये इस ध्यानकी सत्ता कैसी प्रबल हैं, की खराब काममेही आनंद मानाता हैं. किलेक अपनी चातुरी बताते हैं, की, हम कैसे विद्वान हैं. कैसा परपंच रचा, की-अंग हीन, रूपहीन. इन्द्रियहीन, औरगुणहीन कन्याको भी कैसे बड़े स्थान दिलादी; और नगदी इत्ने रूपे दिला दिये. बुद्धका, गोगिष्टका, नपुंशकका के .

सी युक्तीसे लग्न कराविया, अब वो दोनो भलाइ तावे उम्मर रोवो. अपना तो मतलब हो गया. ऐसेही गाय अश्वादी पशूओंको, तोता मैनादी पक्षीकी, गेग, याग, घावडीयादीकी, झूटी परसंस्या कर, प्रपंच रच, रुपका प्रावृत (पलटा) कर. घुरके अच्छे घनाकर, ज्यादा कीमत उपजावे, और खुशी होवे, तैसे पुराने वस्त्रोंको, रंगादी प्रयोगमे नवे घना, गोट्टे भुषणोंको सचे घना, या अच्छा माल घताके छोटा दे, हर्ष मानें, कोइ विश्वाममं अपने स्वजन मित्रको गुप्त धन भूषण धापन रच गया होय, उसे दया रखते मालकको न दे. ऐसेही झूटी गवाइयां खडीकर छुटे धन (रुपे) घनाके गृह धनादिकका हरण कर खुशी होंवे. ऐसे अनेक बेपारके कामोमें, दगा-बार्जी करे, परपंच रखके दूसरेको छलनेका विशार करे मो मृयानुबन्ध रोद्रव्यान.

अपना मन माना निथ्या पंच चलाने वितराग कथित शास्त्रको छोट. अनेक कल्पित (झूटे) मन्त्र, चरित्र. वगैरे घनाके: विशार मोने जीवोंको

भरममें डाले, हिंशामार्ग बता; शुद्ध दया मार्ग छोड़ा, मनमें आनंद माने, की- मैंने इत्ने ग्राम, इत्ने मनुष्य, मेरे बनाये. ऐसेही, ज्ञानवंत, आचारवंत, शुद्ध जिनेश्वरके मार्गके परुष, क्षमासील, ब्रम्हचारी वगैरे धर्म दीपकोंकी, महीमां सुणके इर्ष्या लावे; और उनका अपमान करने, उनके सिर झूटा कलंक चडावे, निंदाकरे; और अपनी झूटी बातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने. कन्यादान, ऋतुदान, ठेहराके कुलीन स्त्रियोंको भृष्ट करे. धर्म निमित्त हिंशामें दोष नहीं ऐसा ठहरावे. ब्रम्हचारी नाम धरा, विभचार सेवन करे, और महातमा वगैरे नामसे बोलाते आनंद माने, सो भी मृषानुबन्ध रौद्रध्यान.

मनहरः—सजनकों देखकर दुर्जन करत कोप, ब्रम्हचारी देखकामी कोप करे मनमें. निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर, धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमें; सुखीर देखकर, कायरकरत कोप; कवीयोंको देख मुट्ट हांसी करे जनमें. धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे, बिनाही निमित्त खाक डारेतिहुं पनमेंः—

वर्धर (धरे) अन्धे, लंगड़े, आदी अपंगको; कुष्टादी रोगिको, निर्वुधी, इत्यादिकी हांसी करे, इन्हे चिडावे, चिडते देखमजा माने. जुवा-तास (पत्ते). शतरंज, वगैरे ख्यालोंमें, सहजही झूट बोलाना हैं. निकम्में विवादमें, प्रवादीयोंको दगासे छलनेमें, झूटे पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्र-जालमें, अनेक कोनुक बतानेमें, मंत्र जंझादीका आडंबर बडा, आपनी प्रतिष्ठा (महिमा) सुण खुश होवें. शास्त्रार्थ करते (वाख्यान देते) अपने मरम (हर्ज) की बातकों छिपावे, अर्थको फिरावें, अनर्थ कों. झूटे गप्पोंमें प्रपटाकों रीजाके, आनंद माने. दया, सत्य, सौलार्दा गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगड़े, या लीला, कि तुहल, वी कथा होवें, उन्हे श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुबन्ध गौडध्यान समजना.

मृषानुबन्धका अर्थ तो बहुतही होता हैं; परंतु मागस इतनाही है की झूटे काममें अनंद माने उसहीका नाम मृषानुबन्ध गौडध्यान जाणना.

तृतीय पत्र--“तस्करानुबन्ध”.

३ “तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान” सो—

श्लोक
३३३३३३३३
३३३३३३३३
३३३३३३३३

यच्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपि प्रमोदमनुलं कुर्वन्तियत्संततम्;
चौर्येणापि हते परैः परधने यज्जायते सञ्जम-
स्तच्चौर्यप्रभवंवदन्ति निपुणा रौद्रसुनिन्दास्पदम्

शाननिब.

अर्थ—चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी प्राप्ती हुई देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें, कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रशंसा करे; इत्यादि विचार करे तो तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान अति निंदनिय हैं.

जीव तृष्णा रूप विक्राल जालमें फसे हुये, सर्व जगतकी अन्न, धन्न, लक्ष्मी, कुटुंब की ऐश्वर्यता (मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इत्ने पुण्य करके नहीं लाये की. सर्वाधीपती बने? और प्रमादी (आलसी) ओंसे मेहनत करके, द्रव्योपारजन करना तो बने नहीं. तब सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा ब्रत करने, पापोदय से उनको चोरी सिवाय, दूसरा उपायही कौनसा दिखे. इस हेतुसे, वो चोरीयानुबन्ध रौद्र ध्यानमें चडते हैं.

विचार करते हैं की घटासे अच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रातीमें, कण्ठ वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा, क्षात्रदे, द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूरहे कोइ सामने आय, में शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीन हूं की-एक झटकेमें, बहुतोंके घटके (टुकड़े). ऐसा सटकु की किसकी माने दूध पिलाया हूं, जो मुजे पकड़े. में अनेक विद्याका जानहूं, सबको निद्रा ग्रस्त कर सक्ता हूं. बडे २ जंजीर और तालोंको एक कंफरीसे तोड सक्ता हूं. शैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निध्यान, गुप्त-द्रव्य, और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं- इत्यादि अनेक कलाका धरनहार में हूं. क्या मगदूर कोइ मेरी बरोवरी कर सके. हजारों सुभट मेरे हुकममें हैं, वो भी मेरे जैसे कलामें पूर, और सूर वीर हैं. मेने बडे २ नरेंद्रोको धुजादीये हैं. अब मे धोडेही कालमें, इश्वरो (मालकों) का संहार कर, सर्व ऋषि-सिद्धी का श्वामी बन, निश्चित मजा भोगवुंगा. अमुक स्त्री महा रुपवंत हैं, उसकाभी हरण करूं. अमुक भूषण, वस्त्र, पाद, पशु. मनुष्य, इन सर्व उत्तम पदार्थोंको, मेरे स्वाधीन कर, उनके उपभोगसें मेरी आत्मा व्रत करूं, विचार अंतःकरणमें होवे सो तत्स्करनुबन्ध

रौद्रध्यान.

ऐसेही किलेक नामधारी साहुकार, लोकोकों सेठाइ बताने, उत्तम २ वत्त्र, भूषण, तिलक-छापे, माला, कंठी, से शरीर विभुषित कर, माला फिराते, बडे धर्मात्मा बन, ऊंची २ गादी तकीयोंके टेके, दुकान पे विराजमान होते हैं. शीकार आइ के माला हलाते, भगवानका नाम उच्चार ते, मीठे २ बोल. उस भोलेकों, पान बीड़ी आदी के लालच से भरमा के, ऐसी हुस्यारी से ठगाइ चलाते हैं, की क्या मगदूर कोइ समझतो जाय, मोलमें, बोलमें, तोलमें, मापमें, छापमें, जबाबमें ठगाइ चला, बस पहुँचे वहां तक. उसे लूटनेमें कत्तर नहीं रखते हैं. और विश्वास उपजानें गायकी, बच्चेकी तथा भगवानकी, दमड़ी २ के वास्ते कत्तम (सोगन) खाजाते हैं, इच्छित लाभ हुये बडे खुशी होतें हैं. अच्छा माल बत्ता खोटा देतें हैं, अच्छा बुरा भेला कर देतें हैं, हिसाबमें, व्याजमें, उनका घर हूबो देतें हैं. ऐसे २ अनेक चोरी कर्म भर बजार में कर साहुकार कहलातें हैं. अपने चालाकीको हुस्यारी समझ बडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरीयानुबन्ध रौद्रध्यान.

ऐसेही कित्तेक साधू०ओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज आप तपस्वी हो, तब तपस्वी न होने परही कहे की हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेहैं, सो तपका चोर. ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन, बस्त्रादी धारण कर, आचार बंत्त बजे, श्वेत बाल होनेसे स्थैर (धृढ) बजे, रूपबंत्त हो राजकधी त्यागनेवाला बजे, क्रूर प्रणामी होके, दांभिक पणेसे, बेरागी बजे बगैरे धर्म टगाइ कर, आनंद माने सोभी तत्कारानुबन्ध रौद्रध्यान.

किसीके मकान, बगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, धरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल पुष्पादी, ग्रण कंकड़ जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालिककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगबके, आनंदमाने सोभी चौर्यानुबन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणने में आवे, उनको ग्रहण करनेकी, अपने तापे करने-

६ तव तेणे वय तेणे, रुये तेणेय जे नरा;

आचार भाव तेणेय, कुव देवेद क्रियसा ।

अथ आचारदा, वृत्तदा, रूपदा, तादा, भाव का चोर, पाके, दृष्टावधि । दबके बंदाइ मेंमें देव हांते है.

की भोगवणों की अभीलांषा होवे, वोही तस्करानुबन्ध तीस्तरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भावमें लेके मजा माने, चोर को साहाय देवे. खान पान वस्त्रादी से साता उपजा, उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हांसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु वेंचने की, अपने राज में राजानें मनाकी होय, उसे गुप्त लाके वेंचे, और खुश होवे, इत्यादी तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान के, अनेक भेद है. सबका मतलब इलाही है कें मालककी रजा (आज्ञा) विन, या उसके मन विन, जघ्वर दस्तीकर जो वस्तु पे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुबन्ध रौद्रध्यान.

चतुर्थ पत्र "संरक्षण"

४ "विषय संरक्षण रौद्रध्यान—इस जगत्में सब जीव पापीही पापी हैं, ऐसाभी नहीं समजना; तथा सब पुन्यात्मा हैं, ऐसा भी नहीं समजना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य और पाप दोनों आनादी सें लगे हैं. पापकी वृद्धि होनेसे, दुःख की विशेषता, और पुण्यकी वृद्धि होनेसे, सुखकी विशेषता होती हैं; ज्यादा होता

हैं सोही दृष्टी आता हैं; तो भी उसका प्रतिपक्षी गुप्त बनाही रहता हैं.

जिनके पुण्यकी अधिकता होतीहै, उनको सुख दाइ मनयोग, साम्ग्रीयोंका संयोग मिलता है; वों उसका वियोग कदापी नहीं चाहतें है. (यह वर्णव आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें हो गया है) परंतु वस्तुका स्वभावही “अध्रुव असा सयंमी” अर्थात् अध्रुव, अशा-श्वतः क्षिण-भांगूर हैं. “समय ३ अनंत हानी” भगवंतने फरमाइ, सो सत्य हैं. वस्तुका स्वभाव क्षिण २ भें पलटता २, किस्ती वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजाती हैं; उसे नष्ट न होने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय कियाजाय, उसीका नाम विषय संरक्षण रौद्रध्यान हैं.

राज लक्ष्मी प्राप्त होनेसे, विचार होयकी रखे मेरे राज्यको, कोई परचक्रीयादी हरण करे. इस लिये अञ्जलही धंदोयस्त करे, चतुरगणी शैल्य (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ प्राक्मीयोंका संग्रह करूं, धोकेके स्थान छावणी डालू, उद्धतोके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रुके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादी को इनाम इकरामसें संतुष्ट रखूं की वक्तमें जान झोंकदे. पुक्त, पुस्ती, उंडी, खाई, शत्यनीयादी

द्वितीयशाखा-रौद्रध्यान.

स्व युक्त उंच बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण
ब्रह्मादी, अनेक शस्त्र, वक्तरोंका, संग्रह कर रखू, धनु-
वैदादी शिक्षा ग्रहण कर, शंभ्राम विद्यामें प्रवीन बनू.
कसरत, और औपधीयादीके सेवनसे, सरीरको पुष्ट
मेहनती रखूं की, वक्तपे हारूं नही. इत्यादि उपायोंसे
राज्य रक्षणकी चिंतवणा करे, सो भी विषय संरक्षण
रौद्रध्यान.

द्रव्यको जर्मनीयादीकी तीजोरीयोंमें रखवू, जिस्से
अग्नी, चोरादिकका उपद्रव न पहुँचे. मेला गेहला रहूं,
वी जिससे कुटुंब चोरादी धन हरने पीछे न लगे, कि-
सीके साथ मोहव्वत न करूं की, वक्तपे किसीकी प्रा-
र्थनाका भंग करना नही पड़े, संकोचसे थोड़ेही खर्चमें
गुजरान चलावूं. हलकी वस्तु बापहूं, इत्यादि उपायसे
द्रव्यका रक्षण करूं, और स्त्रीयोंको पडदेमें रखूं, खो-
जाओंका प्रहरा, खान पान वस्त्र भुषणकी मर्यादा
कमी भाषण, और अपनी तर्फसे उन्हे संतोष उपज-
रखू. की-जिससे वो अन्यकी इच्छा न करे, स्वजन
लोकोंको खान, पान, वस्त्र, भुषण, स्थान, सन्मानसे
तोपूं की, जिससे वो वक्तपे पूरा काम देवे, मक-
सुधराइ सफाईसे रखूं की पड़े नही. इत्यादी

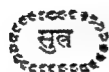
रसे संपत्ती संततीके रक्षणका विचार करे, तो भी विषय संरक्षण रौद्रध्यान.

ऐसेही येह मेरा सरिर, रत्नोंके करंडीये से भी अधिक प्रियकारी हे, इसको. शीत उष्ण वर्षाऋतुमें. यथा योग्य वस्त्र, आहार, पाणी, मकान, से सुख देवूं, दंश, मच्छर, बगैरे क्षुद्र प्राणियोंके भक्षणसे वचायूं शत्रुओंसे रक्षण करने, शत्रु सुभटोंका बंदोबस्त करूं क्षुधाको इच्छित भोजनसे, ग्रामाको शीतौदकसे, वात, पित्तादी रोगको औषधोपचारसे, मंत्वादीसैं- विंसादीके उपसर्गसे रक्षण कर, इस सरिरको अखंड सुखी रखू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण-स्तेज (दमकदार) पुष्ट शरीर देख, खुशी होवे; और अभक्षादीसे पोषण करनेकी इच्छा करे. और शरीरके, स्वजन सम्यन्धीयोंके संपत्तीके नाश करनेवाले जो हैं, उनपे दृष्ट प्रणाम लावे, उन्हे-देख क्रोधातूर हो जावें, उनके नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचारना) करे. और अपना शरीर धन बगैरे दूसरेके तावेमें होय, उनको स्वतंत्र करने अनेक कूयुक्तियोंका जो विचार होवे. ये सब, विषय संरक्षण नामे रौद्रध्यान समजना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हैं. परंतु सबका

तात्पर्य यह है की इस ध्यानमें विशेष कर. अपना स्व-
रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार बना-
रहे. इसलिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा हैं.

द्वितीय प्रतिशाखा-“रौद्रध्यानीके लक्षण”



रोहस्तणं ज्ञाणस्त चत्वारि लरकणा पन्नं-
ता तंजहा, उत्तणदोसे, बहुलदोसे, अ-
णाणदोसे, अमरणांतदोसे.

अर्थम्—रौद्रध्यानीके ४ लक्षण. १हिंसादी पा-
पोंका विचार करे, २विशेष (अखंड) विचार करे. ३अज्ञा-
नीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे. ४मृत्यू होवे वहां लग
पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका
विचार, कृतव्य, और स्वरूप भयंकर होवे, यह तो स्व-
भाविक हैं. विचार मगजमें रमण कर अकृती धारण
कर, उसही कार्यमें प्रवृत्तने शरीरकी प्रेरना करताहैं.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे, रौद्र कार्यके वि-
षयमें जो प्रवृत्ती होती हैं. उसके मुख्य चार भेद
भगवानने फरमाये हैं.

प्रथम पत्र-“उपण दोष.”

१ उपण दोष, सो हिंशा, झूट, चोरी, और वि-
 पय संरक्षण, इन ४हीकी पोषणताके लिये, जो जो
 काम करे सो उपण दोष. जैसे-हिंशाकी पोषणता
 (वृद्धी) करने. अनेक, पावडे, कोदली, खुरेपे, वगैरे पृथ-
 वीको खोदने फोडनेके शास्त्रका संयोग मिलावे. अधूरे
 होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावे, और
 पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हे लगावे. एही पाणीके
 आरंभकी वृद्धीके लिये चडस, रेंहट, मशक या घडा, क
 लशा, वगैरे वृत्तनो. कूवा, बावडी, तलाव, नल, फुवारे, होद,
 आदी स्थान वणवाके पाणीका आरंभ करे करावे,
 अग्नीके लिये चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसबाजी,
 वगैरे करावे औरको उस काममें लगावे. हवाके आरंभके
 लिये, पंखी, पंखा, वार्जित्र, वगैरे. हरीके आरंभकेलिये
 घाग, बर्गचि, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प
 फल, घ्रणादीका छेदन, भेदन, पचन, पाचन. भक्षण,
 करे करावे, घ्रसके आरंभकेलिये धृम्रदिक प्रयोगसे मच्छर
 डांस, पटमल आदीकोमारे जाल फासामे जलचर, वनचर,
 ग्वेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादी शस्त्रसे
 छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पशूको कठिण

(घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे
अहार पाणीकी अंतगय देवे. अंगोपांग छेदन भेदन
करे. सत्ता उग्रान्त काम लेवे. मेहनत करावे. सदा
निर्दय होके, अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना,
कारण अन्यको संताप उपजाने. वरोक्तादी जो जो
कृतव्य करे, उसे रौद्र ध्यानी समजना-

ऐसेही-झूटका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र
काम शास्त्र, कांदम्बरी. पठन करे: झूटे झगडे जीत
अनेक चालाकोंकी संगत, व कायदे-कानूनोंका अभ्यास
करे, झूटे ख्याल कविता बनावे, चकार, मकार
गालीका उच्चार करे: विभत्स (अयोग्य) शब्द
निडर, निर्लज होके प्रवृत्त. ऐसेही चोरीकी प
लिये, चोरोंके शस्त्र: कोश, कुदाल, गुती, बगरे संग
चोरी कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानवर
चोरोंकी संगतमें रहे. धाडापाडे, चालाकीसे
माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पोष
श्रोतोंकी पोषणके लिये मृदंगादी बजाने
बोंका चर्म (चमड़ा) निकलावे. तारंगीय
गवादीकी आंतो (नशो) तोडावे, चरु ई
जो श्रंगार, तमुग्री, सजाने, सुवर्ण र

आगरों (खदानों) मोतीयोंके लिये, बेंदी सीपोंको चिराये, सण, कापासादी, पिलावे, कतावे, गिरनीयादी द्वारा घघ्रादी घनवावे, अनेक श्रंगारसजे, या स्त्रीयादी को श्रंगारके उनके नाटक ख्यालादी देखे. घर्गीचादी लगावे. घण्टीके पोषणे, घंटादी प्रयोगसे अत्रादी निकलावे पुन्नादी सुगंधी द्रव्यका संयन करे, पुष्पवटिकादी घनाके उपभांगलेवे, रस्सी पोंपणे, भंडिरा, मंस, भोगी, कंद, मूत्र, आदी अभक्ष गावे, पोष्टिक उन्मादिक यन्त्रुका संयन करे, रमायन भस्मादी सेवन करे, बंद-जर्मी गुटिकादी सेवन कर महा कामी बने, सफादीके पोंपणे, अनेक पुन्नादी संयन कर, उत्तम घघ्र भुषणसे श्रंगार सज, हार, तुरीये, अंतर, पुन्नादीसे सगर सज, धूंंधूं कर्त्ता पगरगीयों पहरे, अकड़ मकर नल, बेम्पादी नृत्यमें अगवानी भागले. गान नानों गुदतान घन तान तांडे. मशगुल घन जावे, कामके शौ-रमा अमनकी ननरीयों का बारंबार अवलोकन करे, इत्यादि तरह पंचेन्द्रके पोषणके लिये जो उपायोंकी योजना करे, उसे उमन दीप नामें रोद्रव्यानी समजना.

द्वितीय पत्र-“बहुल दीप.”

“बहुल दीप” मो. बगैक इन्दी कामोंको

विशेष करे अर्थात् ज्यों ज्यों करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा चढती जाय. और इच्छा को त्रस करन अधिक २कर्ता-जाय, परंतु त्रती आय ही नहीं, उसे वञ्जल दोष कहना.

तृतीय पत्र—"अज्ञान दोष."

३ "अणान दोष" सो— रौद्रध्यानका स्वभावही है, के वो उत्पन्न होता तुर्त सज्ञानका नाशकर, जीविको अज्ञानी मुढवना देता हैं. सूकार्यसे प्रिती उतार, कुकार्यमें संलग्न कर (जोड़) देता हैं. सत्सान्त्र श्रवण, सत्संगमें अप्रिती अरुची होती है, और २९ पाप सूत्रोंके अभ्यासमें प्रिती होवें. विषयमें प्रवृत्ति करावे, ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र, वगैरे पढे सुणे, और कूशास्त्रकी, जितमें हिंसा झूट, चोरी, मैथुन, वगैरे पाप सेवनमें निर्दोषता बताइ होय; उनका तथा वसीकरण, उचाटन, अकर्षण, स्थंभनादी विद्याका अभ्यास करे गालीयों गावे, ठट्ठा, मस्करी करे. पुरुषोंको स्त्रीयोंके वस्त्र भुषण पेहरायके, नृत्य, गान, कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम

* २९ पापसूत्र—१ मूर्खीकप. २ उल्पात. ३ स्वप्न, ४ अंगफरक-नेका, ५ उलका पातका. ६ पक्षियोंके श्रवका [कोक] ७ व्यंजन तिलपमका, ८ लक्षणासामुद्रिक, इन ८ के अर्थ—पाप, और कथा-यों ८÷३=२४ और २५ कामकथा, २६ बिद्या ऐश्वर्यायादी २७ मंश, २८ तंत्र, २९ अन्यपत्नीके शिचारके.

विचारही मनमें रमण करता है, जिससे वज्र कर्मोंका बंध सदा होताही रहता है. इसकी आत्मासे धर्म कर्म विलकुल नहीं बनता है. जो देखा देख किया भी तो, कर प्रकृतीके सत्त्वसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता है. हाथमें कुछ नहीं आता है, अर्थात् उसके विचारसे कुछ होता नहीं है. होण हार होतब तो हुवाही रहता है. परंतु उसके मलीन प्रणामसे उसके कर्मोंका बन्ध अवश्य पड़ता है. और उन कनिष्ठ कर्मोंका बदला देने, रोद्रध्यानीकी नर्क गती होती है. वहां यहांके किये हुये कर्मोंके फल भुक्तता है! परमाधामी (यम) देव, हिंसा करनेवालेको, जैसी तरह उसने हिंसा करी होय, वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवाले को काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हैं. सी कारीका तीरोसे सरीर भेदते हैं. सिंह सर्पों, बिच्छू, कीड़े, मच्छर वगैर क्षूद्र जीवोंके घातकका, क्षूद्र जीवोंके जैसा रूप धारण कर, उसे चीर फाड़ खाते हैं. मांस भक्षीको उसका मांस तोड़के बिलाते हैं. मदिरा पानीको, उकलता २ सीसा, तरुवा, तांबा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको, अन्न मय लोह-पुतलीके साथ संभोग कराने है. रागीर्णियोंके रसियोंके कान, रूप लुब्धकी आंख गंध बिलासीका नाक जिभ्याके लोलपी की जिभ्याका

छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसें भरी हुई 'वे-
तरणी' नदीमें न्हाते हैं. तरवारकी धारसेभी अती
तिक्ष्ण पत्र वाले सामली वृक्ष, तले वेठाके हवा चलाते
हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयोंकी तरह सरीरके
तिल २ जिले टुकड़े करते हैं. इत्यादि कर्म उदय आते
हैं. तब सागरो बंध तक रो २ के दुःख भोगवते हैं.
लूटने मुशकिल होजाते हैं. ऐसा ये रौद्रध्यान दोनो भ-
वमें रौद्र (भयंकर) दुःख दाता जाणना.

रौद्रध्यानीके वज्रदा कृष्ण लेस्या मय प्रणाम रह-
ते हैं. ये हिंसा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह ये पंच आ-
श्रव. तथा मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कपाय, अलुभ जोग
ये पंच अश्रव, का सेवने वाला, ज्युने कर्मके फल भोग-
वता अशुद्ध प्रणामके योग्य से पीछा वैसेही कर्मोंका
बंध करता है. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कि-
याही करता है. रौद्रध्यानीका संसारसे लुटका होना व-
हुतही मुशकिल है. अनंत संसार म्लता है. इस लिये
ये रौद्रध्यान 'हेय' त्यागने योग्य हैं.

* चार कोशका उंडा और चाँस कुम्भ. देव वरुक्षके जु-
गलीपोंके चान अक्षेपे डालनही मटके एंगे. बागीक कतरके
ठमो ठम भगे और मोमा बर्षे एनेक गज निकालने से मा-
फ खाली होजावे. वसे बर्षका एक पत्योपम होना है. और
दशकोटा कोटीकुचे खाली हवे. उवेवर्षका एक रुपरे. ५म होता है,

अच्छा मालूम पड़े उसेही अङ्गीकार करे, स्त्रिकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृत्ती तो विना प्रयास स्वभाविक रीतसेही होती हैं. क्यों कि उसका अनादी सम्बंध है. परंतु शुभध्यानमें प्रवृत्ती होनी बहुतही मुशकिल हैं. क्यों कि कोईभी शुभ कार्य सहजमें नहीं बनता हैं, शुभ ध्यानके लिये अठ्ठल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यानमें प्रवेश करने स्मर्थ होते हैं. इस लिये अठ्ठल झां सम्यक्त्वकी दुर्लभता बताते हैं.

सम्यग दर्शन उपजता हैं सो, अनादी वासादी मिथ्यात्वीके उपयता है. परन्तु सशी-पर्याप्ता-मंदकपाइ भव्य-गुण दोषके विचारयुक्त सकार उपयागी (ज्ञानी) और जग्रत अवस्था वाला; इन गुणयुक्तको सम्यक दर्शनकी प्राप्ती होती हैं; परं इनसे उल्ट, असशी अप्रर्याप्ता तीव्रकपायी अभव्य दर्शना उपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और समुल्लिभ, इनकों नहीं उपजता हैं; और पंचमी करण लब्धी भी जो उत्कृष्ट करण लब्धी अनिवृत्ता करण, उसके अंत समयमें प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्रगट होता है,

“पंचलब्धी”

१ क्षयोपशमलब्धी, २ विशुद्धलब्धी, ३ देशना लब्धी, ४ प्रयोग लब्धी, और पमी करण लब्धी, इन पंच लब्धीयोंकी यथाक्रम प्राप्ति होणेंसेही, सम्यक् दर्शनकी प्राप्ति होती है. चार लब्धी तो कदाचित् भव्य तथा अभव्य के भी होती हैं. परन्तु करण लब्धी तो जो सम्यक्त्व और चारित्र्य को अवश्य प्राप्त होने वाले हैं उन्हेंही होवेगा.

अब “पंचलब्धीका स्वरूप” बताते हैं

१ जिस वक्त ऐसा योग बने की, जो ज्ञानावर्णि-यादिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रसक्त प्रकृतीकी शक्तीका जो अनुभाग, सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी होता, अनुक्रमे उदय आवे: तब क्षयोपशम लब्धीकी प्राप्ति होवे. २ क्षयोपशम लब्धीके प्रभाव से जीवके साता वेदनिष्ठ आदी, शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण, धर्मानुराग रूप, शुभ प्रणामकी प्राप्ति होय, सो दूसरी विशुद्ध लब्धी.* ३ छे द्रव्य नव पदार्थका स्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणें, सो देशना लब्धी.*

* अशुभ कर्मोंका सौंदर्य घटनेसे क्लेश प्रणाम की हानी होवे, तब विशुद्ध प्रणाम का तृती स्वभावही होता है.

* नर्कादी म्यानमें उपदेशक नहीं हैं वहां. पूर्व जन्मके धार तत्वके संस्कार से प्रभावित होता है

यह तीन लब्धा कर संयुक्त जीव, समय २ विशुद्धता की वृद्धि कर, आयु दिन सात कर्मका, अंतः कोटी कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्वस्थिती थी, उसे एक कांडक घात (छेद) कर उस कांडके द्रव्यकी, शेष रही हुई स्थिती, विशेष निक्षेपण कर, और घानिक कर्मका, अनुभाग (रस) सो काष्ट तथा लता रूप रहे, परं शैल (प्रयत्न) स्थिती रूप नहीं. और अघानी कर्मका अनुभाग, नीच या कौजी रूप रहे. परं हलाहल विष रूप नहीं. पूर्व जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, बहुत भाग अनुभागका छेद, शेष रहा अनुभाग विषय प्राप्ति करें हैं. उस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति, सो "प्रयोगता लब्धा" और भी संक्षेप प्रणाम. सद्गी पंचेन्द्र पर्याप्तके जो संभव, ऐ. मे उत्कृष्ट स्थिती बन्ध, और उत्कृष्ट स्थिती अनुभाग का सत्व होते, जीव के प्रथम उपसम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे हैं. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विषे संभव, ऐ. ऐसा जघन्य स्थिती बन्ध, और जघन्य स्थिती अनुभाग प्रदेशका सत्व होते भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होवे, प्रथम उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुआ जो

* यह प्रयोगता छन्पी भव्य अभव्यके सामान्य होवे है.

मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी वृद्धी कर, बधता हुवा प्रयोग लब्धीके प्रथम समयसें लगाके, पूर्व स्थिती के संख्यातवे भाग मात्र, अंतः (एक) कोटा कोटी सागर प्रमाण, आयुष्य विन सात कर्मका स्थिती बन्ध करे है; उस अंतः कोटा कोटी सागर स्थिती बन्धके, पत्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होता, स्थिती बन्ध अंतर्मुद्घूर्त प्रयंत सामान्यता केलिये करे हैं; ऐसे क्रमसे संख्यात स्थिती बंध श्रेणि करप्रत्यक (७०० तथा ८००) सागर कम होवें हैं. तब दूसरा प्रकृती बन्धाय श्रेणिस्थान होवें, ऐसेही क्रमसें इत्ना स्थिती बन्ध कमी करतें, एकेक स्थान होए. यों बन्धके ३४ श्रेणी स्थान होतें हैं. इत्तसे लगाके प्रथम उपशम सत्यक्त्व तक बंध नहीं होवें, (छांतक चौथी लब्धी) ५ पांचमी करणलब्धी सो भज्य जीवकेही होती हैं, इसके ३ भेद-१ अधःकरण, २ अपूर्व करण, ३ अनिवृत्ती करण. इनमें अल्प अंतर मद्घूर्त प्रमाणे काल तो, अनिवृत्तीकरणका है, इससें संख्यात गुणाकाल, अपूर्व करणका; और इससे संख्यात गुणाकाल, अधःप्रवृत्ती करणका होता है,

* इमका विवेक गुणामा लब्धी सार ग्रन्थमें है.

* बरग कपय की गंदता को कहते हैं.

सो भी अंतर महुर्त प्रमाणें ही हैं। और भी इस अधः प्रवृत्ती करण कालके विषय, अतीतादी त्रिकाल वृत्ती अनेक जीव समंधी, इस करणकी विशुद्धतारूप प्रणाम असंख्यात लोक प्रमाणें हैं, वो प्रणाम अधः प्रवृत्ती करणके, जितने समय हैं. उल्लेखें सामान्य वृद्धी लिये, समय २ में वृद्धी होते हैं, इससे इस करणके नीचेके समयके प्रणामकी संख्या और विशुद्धता, उपर के समय वृत्ती किसी जीवके प्रणाम से मिलें हैं, इससे इसका नाम अधःप्रवृत्तीक है. इस अधः प्रवृत्ति करण के चार आवश्यक—१ समय २ प्रते अनंतगुण विशुद्धता की वृद्धी. २ स्थिती बन्ध श्रेणी, अर्थात् पहले जितने प्रमाण लिये कर्मका स्थिती बन्ध होता था, उसमे घटाय २ स्थिती बंध करे. ३ साता वेद निय आदी दे प्रमस्त कर्म प्रकृतीका समय २ अनंतगुण वृद्धी पाते; गुड, मक्कर, मिर्ची और अमृत, समान चतुस्थान लिये अनुभाग बन्ध है. ५ अमाना वेदनीआदी अप्रमस्त कर्म प्रकृती, समय २ अनंतगुण कर्मी होती नों व, कार्जा, समान द्वि स्थान लिये, अनुभाग बंध होना है, परन्तु हलाहल जेना नहीं. यह ४ आवश्यक जाणने.

अंतर ५८ के भेद प्रमंग्य है.

२ अथः पृथ्वी करणका अंतर सुहृत् काल द्य.
तीत भये, दूसरा अपूर्व करण होता है. अथः करणके
प्रणाम से, अपूर्व करणके परिणाम असंख्यात लोक
गुणें हैं, सो बहुत जीवोंकी अपेक्षा से; परन्तु एक जी
व की अपेक्षासे तो एक समय में एकही परिणाम हो-
ते हैं; और एक जीवकी अपेक्षासे तो, जितने अंतर
सुहृत् के समय है, उतनेही होने हैं. ऐसेही अथः करण
के भी एक समय में एक परिणाम होंगे हैं. और व-
होत जीवकी अपेक्षासे असंख्य परिणाम जाणनें. अ-
पूर्वकरणकेभी परिणाम समय २सदश कर वृधमान होते
हैं. इस अपूर्वकरणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम
तुल्य, उपरके समयके प्रणाम नहीं हैं. प्रथम समयकी
उत्कृष्ट शुद्धतासे, द्वितीय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत
गुणी हैं. ऐसे परिणामका अपूर्व पणा हैं. इसलिये इस-
का अपूर्व करण नाम है.

अपूर्व करणके पहले समय से लगाके अंतःस-
मय तक अपने जघन्यसे अपना उत्कृष्ट, और पूर्व सम-
यके उत्कृष्टसे उत्तर समय के जघन्य. यों कर्मके परि-
णाम अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्पकी चालवत् जाणना.
ह्यां अनुत्कृष्टी नहीं हैं. अपूर्व करणके पहले समयसे
लगाके जावत् सन्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, --

पूर्ण काल जो जित कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिथ्र मोहनी, रूप प्रगमात्रे, उस कालके अंत समय पर्यंत. १ गुणश्रेणी, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थिती खंड, ४ और अनुभाग खंडन, यह चार आवश्यक होयें. और भी स्थिती बंध श्रेणी हे सो अधः करण के प्रथम समय से लगा. गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होयें हैं. यद्यपी प्रयोग लब्धीसे ही स्थिती बन्धाके श्रेणी होती है, तथापी प्रयोग लब्धीसे नम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना हे, यह नियम नहीं: इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती बन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड-कान्डोत्करणका काल यह दोनों सामान अंतर मुहुर्त मात्रे हैं. वहां पूर्व बन्धाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य उसमेंसे निकाले, जो द्रव्य गुण श्रेणीमें दीये, उस गुण श्रेणीके कालमें समय २ में असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्ती बंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा हैं. २ और भी समय २ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते विविक्षित प्रकृती के प्रमाणु पलट कर, अन्य प्रकृती रूप होके प्रणमें सो गुण संक्रमण. ३ पूर्व बन्धीथी वो सत्ता में रही कर्म प्रकृतीकी स्थितीका घटाना सो स्थिती खण्ड हैं. ४ और पूर्व बन्धे थे, ऐसे सत्तामें रहा

हुवा अगुभ प्रकृतीका अनुभाग घटाना, तो अनुभाग खण्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्वकरणमें अवश्य होते हैं.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी, प्रसस्त अप्रसस्त प्रकृतीका जो अनुभाग सत्त्व हैं. उससे उसके अंत समय विषे. प्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण बृद्धी होता, और अप्रसस्त प्रकृतीका अनंतगुण कमी होता, अनुभाग सत्य होते हैं: तो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रसस्त प्रकृतीका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महातम कर, अप्रसस्त प्रकृतीके अनंतमें भाग अंत समयमें संभवता है.*

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे. जो स्थिती कान्डादी कार्य, तो विशेष तो तीसरे अनिवृती करण विषय जानना. विशेष इत्या. ह्यां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृश प्रणामही हैं. इस लिये जिले अनिवृती करणके अंतर मनुष्यके समय हैं. उल्लेही अनिवृती करणके प्रणाम हैं. इनसे समय २ प्रते. एके-कही प्रणाम हैं. और जो ह्यां स्थिती खण्डन, अनुभाग खण्डादीकका प्रारंभ औरही प्रमाणे लिया होता है. तो अपूर्व करण सम्बन्धी जो स्थिती खंडादिक उ-

* इन स्थिती खण्डादी होनेका विशेष अर्थ इसकी है. फल ह्यां अन्य जीवके विषे नहीं लिया.

सके अंतः समयही समाप्त पना हुवा.*

यहां यह प्रयोजन है की जो अनिवृत्ती क-
रणके अंत समय त्रिपे, दर्शन मोहर्नी और अन्तान
वन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृती स्थिती, प्रदेश, अनुभाग,
का समस्त पने उदय होनेकी, अयोग्यता रूप उपसम
होनेसे, तत्त्वार्थकी श्रवान रूप सम्यक्त्व होता है वो-
ही उपशान्तिक सम्यक्त्व है.

यह भाव चोथे गुणस्थान वर्ति जीवके जाण-
ना, यों आगे अप्रत्याग्यानी चतुष्कका उपशम होने-
से, इच्छा निरुंधन, अल्परंभ, अल्प परिग्रह, शुद्धयु-
ती, संवेर्गी, कल्प उग्रह विहारी, उद्दार्मीनतादी गु-
णोंकी अधिकता होती हैं, आगे प्रत्याग्यानीके चतुष्क-
का उपशम होनेसे, साधुत्व, संपमत्व, तपःतो, स-
मिती गुती, परम वैराग्यतादी गुणोंकी वृधी हानि, शु-
भ ध्यान करनेकी योग्यताको प्राप्त होता हैं.

अन्तान वन्धीके उपशमसे अप्रत्याग्यानीवाले,
अप्रत्याग्यानीके उपशमसे प्रत्याग्यानीवाले, प्रत्याग्या-
नीके उदयनसे संग्रह करायके चतुष्क उदयनवाले.
अं १ इ १ अकृपाइध्यानके मार्गमें अधिक २ विमृद्धता
गन्धता, प्राप्त करने आगे बढे हैं.

० दर सं १ दूरग विरक्त गुयमा मर्षी मार क्षये भग्या १

यह सञ्चयस्त्री, देशवृत्ती, और सर्ववृत्ती, कर्मों-
के उपशम क्षयोपशम, व क्षायकताके योग्यसे निश्चय
में प्रवृत्ती करसक्ते हैं. और इन सिवाय ज्ञानारणव
ग्रन्थमें ध्यानीके ८ लक्षण कहे हैं—

श्लोक मुमुक्षुर्जन्मनिर्धिणः शान्तचितोवशीस्थिरः
जिताक्ष संवृतोधीरो, ध्याता शाल्वेप्रशस्यते.

अर्थ १ मुमुक्षु आर्यत् मोक्ष जाने की जिसे
अभीलापा होवेंगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा; आत्म
निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुग्दल प्रणित सु-
खोंसे वृत्ती निर्वृती है. उन्हीके प्रणाम ध्यानमें स्थिर-
ता करेंगे, ३ शान्तवृत्ती-जो परिसह उपसर्ग उपनेशांत
प्रणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त कर
सकेंगे, ४ स्थिरस्वभावी जो मनादी योगोका कुमार्ग
से निग्रह कर, ध्यानमें वृत्तीको स्थिर करेंगे, वोही
ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी जिसस्थान ध्यानस्थ
हो, वहांसे चल विचल न करे; व ध्यानके कालतक
आसन बदलें नहीं; वोही सिद्धासनी कहै जाते है. जितें-
द्रिय श्रोतादी पंच इंद्रियोंको, शब्दादी पंचविषयसे,
रागद्वेषकी निर्वृती कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वो-
ही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे ७ संवृतात्मा जिनने
अपनी अंतर आत्माको संवृत कर, हिंसादी पंचाश्रा-

यसं निर्वाही, अहिंसाही। पंचमहावृत्त भिन्नकार किये।
 तथा अनर्ही प्रणति रूप संसर्गकर, जो जंत्रःकरणकी
 वृत्तियों धिक्कार मार्गमें प्राप्ति कराती हैं, उन वृत्ति-
 योंको अंतरिक ज्ञान, आत्माकी प्रबल प्रेरणा कर नि-
 र्वृत्ताड, ध्यान पानकी० लालुपना स्यागी, योही ध्यान
 सिद्धी कर सकेंगे. ८ धार होय—अर्थात् ध्यानमन हुये
 फिर, पेसाभी कठिण परिमह उपसर्ग आनेमें, बिल-
 कूल प्रणामोंको चल बिचल नहीं करे. क्यों की ध्या-
 नमें पर्येश करते पहले “अप्पाणं वोसी रामी” अर्थात्
 मैं इस सर्गियों धारिताराना हूं. इसकी समस्त छांडता
 हूं. यह सर्गिर मेरा नहीं, मैं इसका नहीं, ऐसा कहके
 घटते हैं; तो जय यह सर्गिर अपनाही नहीं, तो फिर
 इसका भक्षण करो, दहन करो, या छेदन भेदन
 करो, कुछभी करो, अपनको क्या फिकर. ऐसा नि-
 धय होय, तबही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सका

• एकदम मृत्यु घटनी मुझकिल है. इस लिये योही लुलुसा
 घटानका सदा अभ्य.स करना चाहिये, जैसे यह वस्तु नहीं
 साइता क्या वह वस्तु नहीं पहरा तो क्या यह काम अग्रज
 तो मुझकिल लगना वस्तु फिर रुझन होजायगा यो सर्व
 वस्तु उपर से लुलुसा घटनेकी यह बहुत सहजकी रीती है.
 यो करनेसे कोई बल निर्देयबनाओ प्राप्त होसके है.

हे. ध्यान किया तो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो बिना उपसर्ग, बिना दुःख देखे नहीं होता है. जो परितः उपसर्ग पड़े, वो, कर्मका क्षय करनेही पड़े. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त, पीछा नहींज. हटना. ऐसा द्रढ निश्चयसे धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता है. इन आठगुणोंके धारण हारही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होते हैं, ऐसा जाण शुभ-ध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोको पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहिये.

— — — — —

द्वितीय उपशाखा—"शुभध्यान विधी."



क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह. शुभाशुभ य-
नु जानः अशुभ तजी शुभ आचरी, ध्या
ध्याना धर्म ध्यान.

१ क्षेत्र. २ द्रव्य. ३ काल. और ४ भाव. यह
५ शुभ अच्छे: और ६ अशुद्ध. ग्योटे. यों ८ भेद होते
हैं. जितनेसे ८ अशुद्धको त्याग कर. शुद्धका जोग
मिलाके. हैं! ध्यान ध्याताओं शुद्ध-धर्मध्यान ध्यावो.
कोइभी काम यथाविधी करनेने इष्टिनार्थ को-

प्र सिद्ध करता हैं. इस लिये ह्यां मोक्ष प्राप्त रूप कार्यकी सिद्धी करनेवाला ध्यान हैं. उसके करनेकी विधीका वर्णन करते हैं.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धीकी बहुतही जरूरत हैं. अव्यय क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धी बताते हैं.

प्रथम पत्र "क्षेत्र"

१ 'अशुद्ध क्षेत्र'-दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पखंडी, म्लेच्छ, कुलिंगा रहते होये; ऐसे क्षेत्रमें रहनेसे उपसर्ग उपजनेका संभव हैं. जहां पुष्प, फल, पत्र, धूप, दीप. या मदिरा, मांस, ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव हैं. जहां विभचारी स्त्री पुरुष क्रिडा करें, चित्राम क्रिये होयें. काम क्रिडाके शास्त्रों का पठन होता होय. नृत्य, गायन, होते होय. बाजि. व्र वजते होय. ऐसे स्थानमें, वीकार उत्पन्न होनेका संभव हैं. जहां युद्ध=मल कुस्तीयां लडाई झगडे होते होय. झगडेके शस्त्र पडते होय. पंचायती करते होय, वहां विखवाद होनेका संभव हैं. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिकादिकने मना करी होय, वहां रहनेसे घांरी, तेश, और मध्यमें निकालनेका संभव है. जहां

जुवा खेलते होय, कैदी रहते होय, मद्य मांस (दारु) विकता होय, पारधी रहता होय, तिलिपक (कारागर चमार, सोनार, लोहार, रंगारे, इत्यादी) रहते होय. वहां चितविग्रह होनेका संभव है. जहां नपुशक. पशू (तिर्यच) कुलुंछनी. भांड. नट. खट, इत्यादि अयोग्य रहते होय. वहां, अग्रणीत होनेका संभव हैं. इत्यादि अयोग्य स्थान वर्जके ध्यान करे.

२ 'शुभ क्षेत्र' = निर्जन स्थान—जहां विशेष मनुष्यादीकी बस्तीया. आवा गमन न होय. समुद्रके, तथा नदीके तट (किनारे) पर, वृक्षोके समोहमें,* बेलीके मंडपोंमें, प्रदत्तोकी गुफाओंमें. स्मशानोंकी छत्रीयोंमें, सूखे झाडकी कोचरमें, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर) में, वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमें कही उन) वास्तोंसे वर्जित, देवालयमें. इत्यादि स्थान फालुक (निर्जीव) होय, वहां ध्यान करने योग्य स्थान हैं. चितमें समाधी (शांती) रहती हैं.

द्वितीय पत्र—“द्रव्य.”

३ 'अशुभ द्रव्य'—जहां अस्थि, मांस, रक्त, चर्म:

० अफोव मंडपानि शायद् शोवियास्तवे—उत्तगन्धियन ५८
अर्थ—अफोव (नागरवेण) के मंडपमें ध्यान व्य. दे ई. आश्वको
रुपाक.

मेंद, चरबी, और मृत्युक जानवरोंके कलेवर, खान, पान, पकान, तंबोला, औषधीयों, अनरादी तेल, शैय्या (प. लंगादी), आसन, स्त्री पुरुषके शृंगारके वस्त्र, भुषण. का. मासन, स्त्रीयादीके चित्र, इत्यादी दृश्य होय, वहां ध्यानीयोंका चित स्थिर रहना. मनका निग्राह (बल) होना मुशकिल हैं.

४'शुभद्रव्य-शुद्ध' निर्जिव पृथ्वी-शिलापटपे. काष्ठासन=पाट बजोटा (चौकी) पें. पारलके आसनपे उन, सूत, आदी शुद्ध वस्त्रपें ध्यानस्त होनेसे प्रणाम स्थिररहनेका संभव है. ध्यान इच्छकों अहार थोडाकर सो भी हलका [तांदुलादी] विशेष घृत माशालेसे बना-जित, शीतादी कालमें, प्रकृतीयोंको अनुकूल [सुख-दाता] वक्तके, और वजनके, प्रमाणयुक्त; निर्जिव, और निर्दोष, शुद्ध, करनेसे चितको स्थिर रख शक्ते हैं.

ध्यान इच्छकों-आसन; मुख्यता पद्मासन [पालखी घाल दोनो सायलेंपि दोनों पग चडा दोनों हाथ एकस्थान यिकमे कमलके समकर, पेटके पाम नाचे रखके स्थिर होय] पर्याकासन [पालखी घाल घेठे] दंडामन [खेडेरहे] ये तीन हैं. और तो वीरामन, लगडामन, अभ्यनुजासन, गौडूआसन, बगैरेसे इस व-

तीन अंगुलीयों [तर्जनी, मध्यमा, अनामिका] के नव वेड़े (सन्धीरेखा) कों चारे वक्त गिणनेसे $१२ \div ९ = १०८$ एकसो आठ होते हैं. सोही उत्तम हैं.* और माला तो-मध्यम तथा कनिष्ठ गिनते हैं. ध्यानीकों ध्यानमें स्थिर होते, नशाग्रदृष्टी मेखोन मेख स्थिर कर. चित्रकी मूर्तियोंके जैसा स्थिर हों, निश्चल हो. मुख फाड़को ढीली छोड़, चितको सर्व व्याधी सर्व विकल्पसे मुक्त करवे-टनेसे, ध्यानकी सिद्धी शुद्धतासे होनेका संभव है.

तृतीय पत्र-“काल.”

५ ‘अशुभ काल’-† पहला, दूसरा, और तीसरा आरा, माठरा, (कुछकमी) तथा छद्म आरा, इन में धर्मीजनोंके अभावसे ध्यान होनेका दम संभव है. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल. अती जीवोत्पत्तीका काल. दुष्काल. विग्रह काल. रोगग्रस्त काल, इत्यादी काल ध्यानमें विग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ ‘शुभ काल’-ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल

* कानष्टा (छोटी अंगुली) और अंगुष्ठ छोड़के.

† इसेही नोकरवाली कहते हैं. नकी सूतादीको.

‡ ये तीन आरा ध्यान साधनेके लिये ही अशुद्ध है, और तरह नहीं समझना.

नो चोया आरा गिणा जाता है. क्यों की उसमें वज्र
वृषभनागावादी संघन और ध्यान करनेके अनुकूल जो
गजाटियोंकी विशेषता थी. जिससे महान (मरणांतिक)
संकट सहन करगी, अडोल (स्थिर) रहतेथें. इस पं-
चम कालमें मंत्रणादिककी गुन्यतासे, उस मुजब ध्यात
हो नहो सका है. तो भी सर्वथा नास्ती नहीं समज-
ना, क्यों कि गुग कारक यन्त्र तो हमेशा गुणही कर-
ती है; चौथे आरंभ मङ्गलमें ज्यादा मिठास होगा,
और अर्ध्या काल प्रभावमें कमी पडगया होगा. तो
भी सङ्ग तो मीठाही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी
यथा विधी किया हुआ ध्यान, गुणयत्नाही होगा. और
भी ध्यान करना पुरुष शक्ति उष्णादी कालमें अपनी
प्रकर्तारके अनुकूल समय विचारे. थी उत्तराध्वेयजी
मृत्रमें तो "थीये ध्यान धाया इह" ऐसा फरमाया है,
अर्थात् दिनरु और गर्भारकी दुमरी पोरमी (प्रहर)
में ध्यान धरे, और कितनेक ग्रन्थोंमें पिण्डा गर्भा
(गर्भ. का चौथा प्रहर.) ध्यानके लिये उनम लिखा है.

यह द्रव्य क्षेत्र और कारक विधी विश्वास अ-
र्थान् शुभ शुभका विचार, फल, अपूर्ण ज्ञानी और
अन्य चित्तवालेके लिये हैं. पुनर् ज्ञानी और अडोल
वालेकी जिनका चित्त निर्याकारी होगया है:

उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकूलही होता है.

चतुर्थ एत-“भाव”

७ ‘अशुद्ध-भाव’ अशुभ या अशुद्ध भावका वरणव, आर्त और रौद्रध्यानमें बताया बोही समजना विषय, कपाय, आश्रय, अशुभयोग, असमाधी, चपलता, विकलता, अर्थैर्यता, नास्तिकता, कठोरता, राग द्वेष रूप प्रणति. यैरे सर्व अशुभ जोग गिणे गये हैं. इन से भावोंकी मलीनता होती है.

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं. सो—

मैत्री प्रमोदकारुण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्
धर्मध्याने मुपरकर्तुं, ताद्वितस्यरसायनं १

अर्थ—१ ‘मैत्री भाव’ २ प्रमोदभाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्तभाव, इन चारोंही भाव संयुक्त होनेसे, धर्म ध्यानकी रासायन (हूवहू-स्वाद) पैदा होती है.

१ मैत्री भाव—“मितिमें सब्ब भूएसु, वेर म-
झं न केणइ” अर्थात्—सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं.

सूत्र—मैत्री करुणा मुदितो पेशाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य
विषयाणां भावग तश्चित प्रसादनम. ३३ योगदर्शन.

अर्थ—सुखी प्राणायोमे मित्रता, दुःखीमे दया, घर्मात्मापे दर्प, और
पापीयोपे मध्यस्त वृत्ति. इस तरे वृत्तनेसे चित प्रसन्न रहता है.

इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित मात्र वैर
 विरोध नहीं है. इस जगत् वार्मा सब जीवोंके साथ
 अपने जीवने. माता-पिता-भ्रा-पुत्र-श्वन्धू-भर्मीयादि जि-
 तने सम्बंध हैं. वो सब एकेक जीवके साथ अनंत २
 वक्त कर आया है. श्री भगवर्माजी तथा जंबूद्विप प्र-
 ज्ञासीमे, फरमाया है-कौ- "अग्रेण ग्युत्रां" अर्थात् संसा-
 रमें इस जीवने, अनंत जन्म रमण कर, तब जगत् फ-
 रमा है. इस अनुसाम्मं, जगत् वार्मा सब जीव अपणें
 मित्र हैं; इस लिये जैसे इस भयके कुटुम्बमें प्रेम रहता है,
 वैसाही सब जीवोंके साथ ग्यवे. गुश्म (दृष्टी न आये
 सो) घादर (दिखे सो) वन (हले चले सो) स्थायर
 (स्थिर रहे तो) इन सब प्रकारके जीवोंको अपणी आत्मा
 समान जाणे. मयसो मूर्खा चहावे सो मर्त्री भाव.

२ प्रमोद भाव इस जगत्में अनेक मत्पुल्य
 अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. किन्तु ज्ञानके सा-
 गर हैं. वहां न मूर्खोंके पाटी (पट्टे हुए) गढादंडा-
 ली कर, जिनागम की रेख श्रोतः गगोंके हृदयमें

दयया आत्मानं प्रियप्राण, तथा सम्यक् दीदीनां

इति मन्दन कृतार्थ, योग प्राणी यथा युतः

अर्थ--जैसे अपने प्राण अपने में निव है वैसी गादी ८

ज्ञानके रिपों को वार्मादा कर तों कुं वंशी बुद्धो १८.

ठंसानें वाले, सिधान्तकी सन्धी मिलाने वाले, तर्क वितर्क कर गहन विषयको सरल कर, बताने वाले, नय निक्षेपे प्रमाणादी न्यायके पारगामी, कुतर्कियोंका शांतपणें समाधान करनेवाले, असर कारक संद्वौधसे, धर्मकी उन्नतीके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ती, व वकृत्व शक्तीके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं। किलेक, शांत, दांत, स्वभावी; आत्मध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (दाग) में, अपनी आत्माके रमाने वाले हैं; किलेक महान तपस्वी, मातृक्षमनादी जन्वर तपके करनेवाले, उपवास आर्यविलादी करनेवाले, पडूरसके, विगयके, त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्वाह करनेवाले। शीत, ताप, लोच, आदीकाया क्लेश तपके करनेवाले हैं। किलेककी ज्ञानाभ्यास की और तपध्यायी करनेकी शक्ती नहीं हैं तो, स्वधर्मायोंकी भक्ती करते हैं। अहार, वत्स, शैयासन, आदी प्रतीलाभ साता उपजाते हैं। किलेक ब्रह्म तन मन धनने चारही तीर्थकी भक्तीके करनेवाले। धर्मकी उन्नतीके करने वाले। प्राप्त हुये पदार्थ की लेखे लगानेवाले हैं। ऐसे २ उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोके दर्शन कर, परमंस्या ध्रुवण कर खुशी होंगे। धन्यभाग्य हैं। की हमारे धर्ममें ऐसे

नर रत्न उत्पन्न हो धर्मदीपाते हैं. यह महा पुरुषों सदा जयवंत रहो. ऐला विचार, उन्का सत्कार सन्मान करे. साता उपजावें. दूसरे को उनकी भक्ती करते देख, हर्ष पावे; सो प्रमोद भावना.

३ 'करुणा भाव'- जगत्वासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. कित्नेक अंतराय कर्मकी प्रचलतासे, हीन, दीन, दुःखी हो रहें हैं. खान, पान, वस्त्र, गृह, करके रहित हो रहे हैं, कित्नेक वेदनी कर्मकी वृथी होनेसे, कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित हो रहे हैं. कित्नेक काष्ठ-खोडा बेंडी आदी बंधनमें पड़े हैं, कित्नेके शत्रुओंके ताबेमें पड़े हैं, कित्नेक शीत, ताप, क्षुधा, लपादी अनेक विपत्ति भोगवते हैं. कित्नेक अन्ये, लूले, लंगड़े, बधीर, मुक्के, गुंगे, आदी अंगोपांग रहित हो रहे हैं, कित्नेक पशू, पक्षी, जलचर, धनचर, हो प्राधीनता भोगवते हैं; बध, बंधन, ताड़न, तर्जना सहन करते हैं, हिंसाकोंके हाथ कटते हैं. इत्यादि अनेक जीव, अनेक तरहकी विपत्ति (दुःख) भोगवते हुये; सुख के लिये तरसते हैं. हमें कोई सुखी करो! जीवत्व दान देवो! दुःख, संकटसे उगारो! बगैरे दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं. उन्हेंदेख दुःखीहोय, करुणा लावे और उनको उस दुःखसे छोडाने, यथा शक्त, यथा

योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हें लुझी; करे तो कलगा भावना.

४ 'मव्यस्त भाव' इस विश्वमें कितने भारी कर्म पापिष्ट जीव सङ्गुण. तद्कर्मको त्याग, खोटेको खिकार करते हैं. सदा क्रोधमें संत. मानमें अकडे हुये, मायासे भो हुये. लोभमें तत्पर रहते हैं. निर्दयतासे. अनाय प्राणीयोंका कटा करते हैं. मदिरा, मांस कंदमूलआदी अभक्ष्य भक्षण करते हैं. अस्तत्य, चोरी, मैथुनमें पट्टता (चतुरता) ब्रताते हैं. विषय लंपट वैश्या, पर स्त्री गमनमें आनंद मानें, जुगारा (जुवा) दी दुर्व्यसनमें लुब्ध अष्टादश पापोंमें अनुरक्त, देव, गुरु, धर्मके, निमित्त हिंसा करने वाले, हिंसामें धर्म माननेवाले, बूढ़े, बूढ़की प्रतिष्ठा बढाने वाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले, अपनी २ पराशंस्यामें मग्न. इत्यादी पापी जीवोंको देख, राग द्वेष रहित, मव्यस्त प्रणाम. से विचार करे की, आहा! देखो इन बेचारे जीवोंकी कैसी विषम कर्म गती हैं: अत्यंत कष्ट चार गती रूप संसारमें नहन करते २. अनंत कष्टसे मुक्त (लुटका) करनेवाली अनंतानंत पुन्योदयसे, ननुन्य जन्मादी उत्तमोत्तम सामग्रीयों प्राप्त हुई हैं. इसे व्यर्थ गमाते हैं? दुर्भागमें लगाते हैं! सुखकी इच्छासे दु

जन करते हैं. कंकरकी खरीदमें चिंतामणी रत्न, और विपकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधारके स्थान बीगाडा करते हैं, हे प्रभु ! इन बेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुटूतज्यके फल भोगवते, क्या दिशा होयगी? कैसी बीटंवणा पायेंगे ! तब कैसे पश्चात्ताप करेंगे ? परन्तु इन बेचारे जीवोंका क्या दोष है, यह तो सब काम अच्छेके लियेही करने हैं, सुखके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धी उपजनें नहीं देते हैं. जैसा २ जिनका भव्य तव्य (होनहार) होय, वैसा २ही बनाव बनारहता है. इत्यादी विचार मध्यस्त पणे उपेक्षा=उदासीनतासें कर सो मध्यस्त भावना.

इन चारही भावनाओं भावते(विचारते) हुये और इसमें कहे मुजब प्रवृत्तने हुये जीव, राग, द्वेष, विषय, कषाय, क्लेश, मोहादी शक्तियोंका नाश करने सामर्थ्य (शक्तबंत) होते हैं. यह भावना भावनेवालेके हृदयमें, उक्त शक्तों प्रवेश करनेका अवकाश (फुरसत) ही नहीं मिलशक्ता है॥

* यांग दर्शन ग्रन्थमें पतञ्जली ऋषिने योगके ८ अंग कहे हैं. ' यमनियमामन प्राणायाम प्रत्यहार धारणा ध्यान समाधयो श्टावङ्गानि ' १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारण. ७ ध्यान, और ८ समाधि.

शुभध्यानस्य "फलः"

इस विधीसे किया हुआ ध्यान इस जीवोंको मोक्ष पंथ लगाने वाला है, हृदयके ज्ञान दीपकों प्र-
दत्त करने वाला हैं, अतिद्रीय-मोक्षके सुखको प्राप्त करने वाला हैं. यों ध्यानमें प्रवेश करनेसे ही, अध्यात्म-

१ "अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यनाः

अर्प—यम के ५ प्रकार किये हैं. १ अहिंसा=सर्व प्राणीयोंके साथ बैर (शत्रुता) और बध (घात) से निवृत्ते चिनसे सर्वकेसा-
थ मैत्राता होवे. (२) 'सत्य'=मन और इन्द्रियोंमें जैसा जानने में आवे वैसा बोले. परंतु दुःस्वदाई न बोले. जिससे वचन सिद्ध होवे. (३) 'अस्तेय'=दूसरेकी वस्तु जिन आशा अनुचित रीतसे गुप्त ग्रहण न करे जिसमें सर्व इच्छित मिले. (४) 'ब्रह्मचर्य'=का-
मका उदय न होवे ऐसा आचरण रखे जिससे शरीरका और बुद्धीका बल बढ़े. (५) 'अनग्निह'=**किंसाभी वस्तुओं** राग (प्रेम) द्वेष न करे. जिससे मन्मात्रका जीवचलका ज्ञान प्राप्त हो.

२ "शौच संतोष तपस्त्वध्यायेश्वर प्रणि धनानि नियमाः"

अर्थ—नियमकेभी ५ प्रकार हैं (१) शौच="बाधमें तो मान

* स्तोक—इत्य शौचं तत्र शौच शौचं मित्रं मित्रह,

एव प्राण मृत दया शौचं बल, शौचं पंचमः॥

अर्थ—सत्य बोलनेसे, तप करनेसे, इन्द्री मित्रहणे, प्राणीयोंकी दय से और बल (प्राण) से सुखी होती है.

दिशा शांती की प्राप्ति होती है. इन्द्रियोंके विषय उसके चित्तकों अकर्षण कर सके नहीं है. मोह निद्रा स्वभाव से समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय जाती है. और ध्यान निद्रा (समाधी) की प्राप्ति होती है. इस तरेसे

दुर्बल व अशुची से निर्वृत्ते, और अभ्यन्तर् छ रिपुको अलग रखने, जिससे भ्रमों का घृणा न होवे और अभ्यन्तर शुचीमें मन निर्मल होवे (१) सताप=प्राण रक्षण के लिये अन्न वस्त्रादी जो आवश्यक है उनसे अधिक इच्छा न करे. जिससे निद्रोप शुची होवे. (२) 'तप'=शुद्धा अथा, संत, उष्णता सह धर्माचरण सद्गुण आचरण करे, जिससे ऋद्धि सिद्धीकी प्राप्ति होवे (३) 'स्वध्याय'=शास्त्र पठन या मन्त्र (वे) का जप करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न हो इच्छित कार्य करें (४) 'प्रणिधान'=इश्वरमें सब भाव स्मरण कर जिससे समाधी भावकों प्राप्त होवे.

(१) 'स्थिर सुख मानसम्'=जिन आसनसे सुख हो व छरीर और मन स्थिर रहे वही आसन भेद है, जिससे चित्तकी एकाग्रता हो. (२) 'तस्मिन्मति श्वास प्रश्वास योगाति विच्छिन्दः प्राणायाम'=श्वास और प्रश्वास को रोकना सो प्राणायाम; इससे आशुप्यही बुरी होती है ज्ञानका अवागमन हो, आत्म जेती

श्लोक.-अशुची करुणा हनि, अशुची निव मेधुन,

अशुधी पदमे व अशुची पर निद्रा भवेत्.

अर्थ-दया रहित, निव मेधुन सेवने का, चोर करने वाले,

और निद्रा सदा अशुद्ध अशुची है.

ई क.व कोव मद मोह सोभ म-सर, इनमे हृदये प्रेत

नहीं करने दे

शुद्ध ध्यानमें प्रयुक्तते जीवकों महा प्राक्कम प्रगटता है. वितरान दिशाओं प्राप्त होता है. उत्तवक्त ध्या-
तालो सुकी सुखका अनुभव छांही (इस लोकमें)
होने लगता है. ऐसी अवल शक्तीके धारन करने
वाला ये विधी युक्त ध्यान हैं.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारके शुद्धाशुद्ध ध्यान सा-
धनोंमेंसे अशुद्धको त्याग शुद्धको ग्रहण बाले ध्यान
ध्यानकी योग्यताको प्राप्त हो सकेगे.

प्रथम इत्यादि है. (१) 'स्तोत्राद्याऽप्यं प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपादु-
क्तर इन्द्रियानां मत्प्राप्ता' = स्तोत्रादि विषयों जो सा-
धारण चित्तको प्रयुक्त है. उनका निरुपेक्ष कर ध्येय पदार्थमें
स्थिर हो मो मत्प्राप्ता, इनका मन स्वार्थीन स्वरूप हो जाता है.
(२) 'देवदेवधित्तस्य ध्याना' = पितृव्य रूपे चित्त (मन) को योग्य
रूपे एकतावा को मो ध्याना. (३) 'देव मत्प्रेषकानना
ध्यान' = ध्याना के पक्षान ध्यान होता है. जिसकी ध्याना करी
वर्षों कर्म-अभिज्ञ होते सो ध्यान. (४) 'उदेवार्थ मात्र नि-
र्धर्म सत्त्वस्य ह्युक्त निरुपेक्ष' = ध्यान पक्ष मत्प्राप्ता होता है.
मत्प्राप्ति में ध्यान भूत जाने है. 'अपमेव संपद' = ध्यान होनेवा
एक होनेसे संपद होता है.

* ध्यानमें धित्त रूपों विद्यमान होते हैं. उनका मन ध्यान है.
सो धित्त ध्यान कहते हैं.

परम पूज्य श्री कहान भी ऋषिजो महाराजके सम्प्र-
दायके बालग्रन्थचारी मुनी श्री अमोलस ऋषि
जी रचिन ध्यानकल्पतरू की शुभध्यान
नामे उपशाखा समाप्त.





तृतीयशाखा-“धर्मध्यान”



धम्मे ज्ञाणे चउच्चिहे
चउप्पडयागे पज्जते तंजहा.

अर्थ—धर्म ध्यानके चार पाये,
चार लक्षण, चार आलंवन, और चार
अनुप्रेक्षा. यों १६ भेद श्री भगवंतनें
फरमाये हैं. सो जैसे हैं वैसे ह्यां कहते हैं.

जैसे पहले अशुभ ध्यानके दो भेद (आर्तध्यान
और रौद्रध्यान) किये, तैसे शुभध्यान के भी दोही भेद
जाणना. १ धर्मध्यान और २ सुहृद्ध्यान, इनका वर्णन
अब आगे चलेगा.

पहले उपमात्तवर्त्तं शुभध्यान करने की विधी
बताइ. अब ह्यां ध्यानस्त हूये पीछे, अच्छा जो विचार
करना सो कहते हैं. अच्छे विचार दो तरह से होते हैं.
१ एकांत कसौड़ी निर्जरा कर, सर्व कसोंको नष्ट कर,
सोक्ष रूप फलका देने वाला, उसे सुहृद्ध्यान कहते हैं.

इसका ध्यान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशुभ कर्मका नाश करने वाला. तथा किंचित शुभ कर्म का भी नाश करने वाला. निर्जरा और पुन्य प्रकृतीका उपराजन करे सो धर्म ध्यान, इसका वर्णन द्यां करता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'



आणा विजय, आवाय वीजय,
विवाग वीजय, संठाण वीजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पाये, १ आज्ञा विचय, २ अपाय विचय, ३ विपाक विचय, और ४ संठाण विचय.

जैसे तरु (वृक्ष) की चिरस्याइ के लिये. पाया (जड़) की मजबुताइ की जरूर है. तैसे ही ध्यानको स्थिर करने के लिये, चार प्रकारके विचार करतें हैं. १ श्री भगवंत ने इस जीवके उद्धारके लिये, हेय (छोड़ने योग्य) ज्ञेय (जानने योग्य) और उपादेय (आदरने योग्य) क्या क्या हुक्म फरमाया; उसका विचार करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान. २ यह जीव अनंत कालसे क्यों दुःखी है, यह दुःख दूर कायसे होते हैं? ऐसा विचार करना, सो अपाय विचय धर्म-

ध्यान. ३ कर्म क्या हैं कैसे उत्पन्न होते हैं और क्या क्या फल देते हैं? यह विचार करसो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४ जिन जगत् में. इस जीवको परिभ्रमण करते अनंत काल वितिक्रंत होगया. उस जगत् का कैसा आकार है. यह विचार करसो संटाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते हैं.

प्रथम पत्र 'आज्ञा विचय'

"आज्ञा विचय" धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकी, इस विश्वमें रहे हुये, बहोतसे जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हैं. वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें, प्रवृत्त ने (चलने) से ही होता है. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेंही रहके साधू श्रावक जो करणी करते हैं, वो करणी ही आत्म कल्याणकि करने वाली हैं. आज्ञासे ज्यादा, कमी, और विप्रित ध्यान करे, वोही मिध्यात्व की गिनतीमें हैं. इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी, बहुत अवश्यकता (जरूर) है, श्री जिनेश्वर भगवान, सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अथो (नीचा)

मध्य (विचला) उर्ध्व (उंचा) तीनही लोकमें. भूत(गवा) भविष्य (होनेवाला) और वृत्तमान (वर्तें सो) इन तीनों ही कालमें, जीव और पुत्रलक्ष्मी अनंतानंत पर्यायों. का, जो परावृत्तन (पलटा) हो रहा है, उनका प्रकाश किया. तबही अपन उनके हुक्मसे जगत् के धराचर (गल स्थिर) पदार्थोंके कोविद (जाण) हुये हैं. और अगोचर (दिन देवे) पदार्थोंके गुण और पर्याय इत्ने सुक्ष्म-अप्राप्ती है की अपन तो क्या, पण्डित बड़े २ चार ज्ञानके धारि, द्वादशांग के पार्षी, महा मुनीयों केही प्रज्ञान (लक्ष) में आने मुद्राकिय होते है. जो पदार्थ अपने नमजमें नहीं आते है, तो भी उन्हें अपन शास्त्रार्थमें पढ़के मत्त मानने हैं. यह निश्चय अपनेको श्री नीधेश्वर भगवानकी आज्ञाके मानने सेही दृढ़ है; क्यों कि अपन निश्चयमें समजने हैं कि श्री विनयग देव राग देव रहित हैं, उन्हें किर्माकागी पक्ष नहीं है, की वो कर्मा अन्यथा (अट) बोले. श्री सर्वज्ञ प्रभुने केवल्य ज्ञानमें देना देखा देना फरमाया, वो सर्व मत्त हैं.

श्री जिनेश्वर भगवानने जो जो फरमाया है उ-
 मनेका वृत्त आचर्यनिय ज्ञान कां करोंक करके रहने
 हैं—



सुत्रार्थ मार्गणा महावृत भावनाच,
पञ्चैन्द्रियोप शमता ति दयाद्र भावः
बन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यातु धर्म्य मिति तत्प्रवदान्ति तद्वत्ः.

सागर धर्मस्त.

अस्यार्थ—सुत्रोंका अर्थ, जीवोंकी मार्गणा, महावृत, भावना, पांचइन्द्रियों दमनका विचार, दयाद्र-भाव, कर्मसे बन्धनका, और छुटनेके उपाय—का विचार, चार गति और ५७ हेतुकी चिंतवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्त्वज्ञ प्रभूने फरमाया है.

ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यकता है: इस लिये पहले ह्यां श्रुतज्ञान वरणव करते हैं.

“ सुत्रार्थ ”

“ गाय ”

सुदकेदलं च णाणं. दोणी वि सरिस्ता
णि होति बोहादो. सुदणाणं तुपरो-
रकं, वच्चरकं केवल णाणं.

देवदत्त

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों बरोबर हैं. परक इत्याही की श्रुत ज्ञान तो परोक्ष हैं और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष हैं. क्यों कि- केवली भगवानने जो जो भाव केवल ज्ञानमें जाणें हैं, वो

में अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है. इसलिये हां मार्गणा कहने हैं.

१ "गति" गति उसे कहते हैं की जिसमें गता-गत (आवागमन) करे, वह गती ४ है. (१) 'नर्क-गति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुःखमय स्थान है. (२) 'तिर्यच गति' जो एकेंद्री सूक्ष्म तो सर्व लोक व्यापी है और वादर एकेंद्री तथा वेन्द्रीसे पंचेन्द्रीय प्रयंत पशु (जानवर) जीव है. (३) 'मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्म भूमी अकर्म भूमी मनुष्य जीव है. (४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन पनि, वाणध्वंतर, देव, तिरछे लोकमें चंद्र सूर्यादी ज्ञानर्षी देव, और उर्ध्व (उचे) लोकवासी, कल्पवासी, १२ स्वर्ग (देवलोक) में रहे वह, कल्पातीत सो ९ ग्री वेग और 'अनुत्तर विमान वासीदेव. यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहते हैं परंतु वहां गये पीछे पुनरावृत्ति (आना) नहीं है.

२ "इन्द्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हैं. जिससे जीवकी जातीकी समझ होए. वह इन्द्रिय ५ है (१) 'एकेंद्रिय' जो पृथ्व्यादिक एक स्पर्श इन्द्रियवाले जीव. (२) 'द्वेन्द्रिय' जो किटकादिक स्पर्श और रस इन्द्रियवाले जीव. (३) 'तैन्द्रिय' जो युका (ज्युं)

दिक स्पर्श रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव. (४)
 'चौरिन्द्रि' जो माक्षिकादिक स्पर्श, रस, घ्राण, और
 चक्षु इन्द्रिय वाले जीव. (४) और 'पंचेन्द्रिय' जो म-
 च्छादि जलचर, (पाणियों में रहे) पशु (पृथ्वीपि रहे) गा-
 यादी स्थलचर, हंतादी पक्षी खेचर. (आकाशमें उडे)
 तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्श, रस, घ्राण, च-
 क्षु और श्रोतेश्चैवाले जीव. इन सिनाय ७ अनेन्द्री जीव
 केवली भगवानको और सिद्ध भगवानको कहते हैं.

३ "काय" काया, लीरको कहते हैं, वह जीवयुक्त
 काया ६ हैं- (१) 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय'
 (पाणी) (३) 'तेजकाय' (अग्नी) 'वायुकाय' (वायू-
 हवा) (४) 'वनास्पति' (सबजी-लीलादी) [यह पांच
 एकेन्द्री हैं] और (६) 'वस्तकाय' (हलते चलते द्वेन्द्रिय
 से लगा पंचेन्द्रिय पर्यंतके जीव).

४ "जोय" जोग-वृत्तरेसे सम्बन्ध कर वह जोग
 ३ हैं. (१) 'मन योग' (अंतःकरणका विचार) (२) 'व-
 चन योग' (शब्दउच्चार) (३) 'कायायोग' (प्रतक्षस्त्रीर)

५ "वेद" वेद विकारका उदय वह वेद ३

* केवल ज्ञानने अनंत कालके मत्तादी विषयको पहचानी जान
 रहे हैं ३३ लिये उनके कर्मादी अव्यय रूप हैं. उनके विषयसे
 उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं है.

(१) स्त्री, (२) पुरुष, (३) नपुंसक.

६ “कसाय” कषाय संसारका कस्स[रस] आके आत्माके प्रदेशमे जमे वह कषाय ४ [१] क्रोध, [गुस्सा] [२] ‘मान’ [अभीमान] [३] ‘माया’ [कपट] [४] ‘लोभ’ [तृष्णा] .

७ “नाणे” ज्ञान—जिस्से पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हैं. [१] ‘मति ज्ञान’ [बुद्धी] [२] ‘श्रुती ज्ञान’ [शास्त्रस्मवर्धा] [३] ‘अवधी ज्ञान’ [रूपी सर्व पदार्थ जाणे] [४] ‘मन पर्यव ज्ञान’ [मनकी बात जाणे] [५] ‘केवलज्ञान’ [सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे] [यह ५ ज्ञान—सम्यक द्रष्टीको होते हैं.]

[६] ‘मति अज्ञान’ [कुबुद्धी] २ ‘श्रुती अज्ञान’ कुशाम्नाभ्यास ३ ‘विभंग ज्ञान’ [उलटा जाणे] [यह ३ अज्ञान मित्यात्व द्रष्टीको होते हैं.]

८ “मंजम” संयम—कृमोसे आत्मा का निग्रह करना गेकना वह संयम ७ हैं. १ ‘अवृत्ति’ (जि-स सम्यक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ) २ दे-शवृत्ति आवश्यक ३ सामाजिक देशसे ‘आवकका और जाव जीव साधुकी) ४ छे दोषस्थापनिय (दोषसे निवारनेवाला) ५ परिहार ‘विशुद्धी’ ‘शुद्ध चरित्र’ ६ ‘भूमसंपगाय’ ‘थोडा लोभविगर सब दोष रहित’ ७ यथा-

ख्यात (सर्वथा दोपरहित)

९ “दंसण” दर्शन—देखे या द्रशे तो दर्शन ४ हैं. १ चक्षु दर्शन, (आखोंसे देखे) २ अचक्षुदर्शन आंखविना चार इन्द्रिसे और मनसे द्रशे) ३ अवधी दर्शन. (रूपीपदार्थ दुरके देखे) और ५ केवल दर्शन (सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव देखे दर्शें)

१० “लेसा” कर्मसे जीवको लेशे (लेप चढावे-वह लेशा ६ हैं. १ ‘कृष्ण लेशा’ महा पापी २ नील लेशा’ अधर्मी ३ ‘कापूलेसा’ वक्रस्वभावी, धीठ ४ ‘तेजूलेशा’ न्यायवंत ५ ‘पद्मलेशा’ धर्मात्मा ६ ‘सुकूलेशा’ मोक्षार्थी और अलेशी अयोगी केवली व सिद्ध भगवत’

११ “भव” संतारमें जीव दो तरहके हैं; १ भव्य वह मोक्षगामी. और २ ‘अभव्य’ वह कदापि मोक्ष न जाय. (नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत.)

१२ “सन्नि” संतारमें जीव दो तरहके १ ‘सन्नि वह ज्ञान व मन युक्तः मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होये सो, मनुज्य तिर्यच और देवता ओं तथा नेरिये. और २ ‘असन्नी’ वह पांच स्यावर, तीन विक्लेंद्री और समुल्लिप्त माता पिता विन हुये मनुज्य, तिर्यच, पंचेंद्री. (नो सन्ना सन्नी सिद्ध भगवंत)

१३ ‘सम्मे’ यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह सम्य.

कत्व ७ हैं. १ 'मिथ्यात्व' बाह्या श्वरूप मिथ्यात्वका. और अन्दर समकित पावे सो. २ 'साम्बादानीय' = लें. ३ मात्र धर्म श्रवके, पडजायसो. ३ 'मिश्र' = श्रधाकी गडबड. ४ 'क्षयोपशमिक' = मोह कर्मकी प्रकृती, कुछ क्षयकरी और कुछ उपशमाइ ढांकी. ५ 'ओपशमिक' मोहकी प्रकृती उपशमाइ. ६ 'वेदिक' प्रकृती वेदे (यह क्षायिकके पेलह क्षण मात्र होती है) ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतिओं क्षय करे.

१४ "आहारे" आहार करे वह आरिक्त, और मार्ग वहता (एक सरीर छोड दूसरे सरीरमें जाता) तथा मोक्षादिकके जीव अन-आहारिक.

यह १४ ही मार्गणा तो अर्थकी सागर हैं, परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये ह्यां संक्षेपमें चेताया हैं. ध्यानी इने विस्तारसे चिंतवन करेंगे.

“महावृत्त”

महावृत्त = बडे वृत्त, जैसे तालावके नाले रो-कनेसे, तलावमें पाणी आना बंद हो जाता है. ये-सेही वृत्त-प्रत्याग्न्यान (पञ्चखाण) करनेसे जगतका पाप बंद हो जाता है.

श्रावकके वृत्तकी अपेक्षासे बडेसो साधुजीके

पंचमहा-वृत्त,

ध्यानी जनवद्भुत करके महावृत्ती होते हैं. इस लिये उन्हें अपने वृत्तोंपे. ध्यान देनेकी वद्भुतही जरूर है.

१ "सर्वं पाणाड वायाउ वेरमणं"=अर्थात् त्र-
स, स्थावर. सुक्ष्म, वादर. सर्व जीवोंकी हिंसासे त्रि-
विध २ सर्वथा निवृत्ते. (सर्वथा हिंसा त्यागे).

२ "सर्वं मुलं वायाउ वेरमणं"=अर्थात् क्रोध-
से, लोभसे, हंसिते, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २
मृपा (झूट) बोलनेसे निवृत्ते.

३ "सर्वं अदिन्नं दाणाउ वेरमणं"=अर्थात् थो-
डी, बहुत, हलकी, भारी, सचित (सजीव) और अ-
चित (निर्जीव) इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चो-
रीसे निवृत्ते.

४ "सर्वं मेहणाउ वेरमणं"=अर्थात् देवांगना
की मनुष्यणी. और तिर्यचणी, इत्यादी मयुन सेव-
नेसे सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृत्ते.

५ "सर्वं परिगाहाउ वेरमणं" थोडा, बहुत, ह-
लका, भारी. सचित, और अचित, इत्यादि परिग्रह
सें सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ निवृत्ते.

* को नहीं मनसे वचनम कायासे. कगवे नहीं मनसे वचन
से कायासे. अन्धा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे ये ९ कोटी

[छट्टा, सब्बं राइ भोयणं वेरमणं" अन्न, पाणी, मेवा निट्टाड, और मुखवान (तंयोलादी) इत्यादी अहार गर्त्राको सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ नहीं भोगवें] ध्यानी इन महावृत्तोंको इनकी भावना भांगे तणांवे सहित चिंतन करनेसे अपने कृतव्य प्रायण होंगे.

१२ "भावना."

१ "अनित्य भावना"—द्रव्यार्थिक नयसे, अविन्यासी स्वभावका धारक जो आत्मद्रव्य है. उससे भिन्न (अलग) गंगादी विभाव रूप कर्म हैं. उनके स्वभावे ग्रहण किये हुये. श्री पुत्रादी सचेतनद्रव्य, सुयगादी अचेतन द्रव्य, और इन दोनोंसे मिले हुये मिश्र द्रव्य, जो हैं मो सर्व अनित्य, अश्रय, विनाशिक हैं. ऐसी भावना जिनके हृदयमें रमती हैं, उनका सर्व अन्यद्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाना है (जैसे वसन किये हुये पै से ममत्व कर्मा होता है.) यो महात्मा अश्रय. अनंत, मुखका ध्यान, जो मोक्ष उमें पाने हैं.

२ "अमर्ण भावना"—इस आत्माको, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तथा अरिहंतादी पंच प्रमेयी छोट, अन्य देविंद्र, नरिंद्र, स्वजन, श्रेण्या. धर्म, धन, या मंत्र. जंत्र

तंत्रादि कोईभी. सरण-आश्रय देनेवाले नहीं है. यथा द्रष्टांत-(१) जैसे हिरण्णके वच्चेको सिंहने ग्रहण किया. उसे छोड़नेसामर्थ्य दूसरा हिरण्ण नहीं होताहै. (२) तथा समुद्रमें राजमेंसे पड़े हुये मनुष्यको कोई आश्रयभूत नहीं होता हैं; तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्यसे समत्व उतार, एके-निजस्वभाव-निजगुणकाही आलंबन करेगे; वोही निजात्म स्वरूप-सिद्ध अवस्था वों प्राप्त होंगे.

३ "संतार भावना"-इस संतारमें, जितने द्रव्य हैं, उन सबको. ज्ञानावरणियादी अष्ट कर्मके योगसे: तथा शरीर पोषणके लिये. अहार पाणी यादीसे तथा श्रोतादी इन्द्रियोंसे, अपने जीवने अनंतवार ग्रहण कि ये और छोड़े, इत्ते द्रव्य संतार कहना. तथा (२) असंख्य प्रदेशमें व्याप्त यह लोक हैं, उनमेंसे एकेक प्रदेशमें. यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संतार हैं. (३) तथा सर्पणी और उत्सर्पणी काल २० कोटा-कोटी सागरका हैं, उत्तके एकेक समयमें इस जीवने जन्म मरण किये, यह काल संतार. (४) और क्रोधादी ४ कपायके मनादी त्रियोगके जो प्रकृत्यादी वचनके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण करके छोड़दिये, यह भाव संतार, ऐसे ४ प्रकारके संतारमें

यह जीव अनन्त कालमें परिभ्रमण करता थाका नहीं. अब उस भ्रमणमें निर्धृत संसारकी घणा ला-
येगा, बोही मोक्ष पावेगा.

४ "एकत्व भावना"—इस जीवकों सहजानन्द (स्व-
भावे होने) सुखकी सामुष्ठी देनेवाला. अनन्त
गुणता धारक केवल्य धान है. बोही आत्माका स
हज सर्ग है; बाई अ-बाई तिन कर्ता है,
और द्रव्य सज्जगद्दी काउर्भा दिखाना नहीं है.
क्यों कि अन्यपदार्थ, मर्कट विकल्प उपजाने हैं,
और अनेक प्रकारका दुःख देने हैं. ऐसा जान सर्व
बाध्यवन्तुओंमें समत्व उतार, एक आत्मापेही जो
इही जमावेगा. बोही आत्म नत्वकी बाँज कर
निजानन्द—सहजानन्द मुख्यसे प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व-भावना" जगत्तुमें रहे हृये कि-
नेक मर्कट पदार्थोंको कृद्व्य सज्जते हैं. और
किनेक अर्थात्ता सहायक मानने हैं. परंतु वो
सर्व कर्मविनि और कर्ममय हैं. वो बेचार आसही
सुखी होने सामर्थ्य नहीं हैं; नो अपनेको क्या सु-
ख देगे. वो अकर्मही बिनाजाने यवनही मर्कट हैं,
नो अकर्मही क्या बनायेंगे. इतने काल जो इस
जीवने संसारमें दुःख पाया, वो सब उन्हींका प्रसाद

हैं. ऐसा निश्चय करके हे जीव ! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हूं. यह मेरे नहीं मैं इनका नहीं. ऐसा विचारता सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूपको प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुची-भावना." इस तरीरको शुची करने, कित्तेक असंख्य अपकाय(पाणी)के जीवोंका वध करते हैं, तो भिष्टाके घटको शुची करने जैसा करते हैं. देखीये वह तरीर मृद और शुक्लके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा है. दुग्ध. और भिष्टाके क्षातसे उत्पन्न हुये पदार्थोंके भक्षणसे वृधी पाया, और जिन पदार्थोंकी इस तरीमें वृधी हुई वोभी अशुची हैं. इस तरीके संयोगसे शुची पदार्थ अशुची होते हैं. सुर्भिगंधी दुर्गंधी होते हैं. परांशनिप्र, निंदनिय होते हैं. मनहर दुगंछनिय होते हैं. बहुत कालसे संप्रेम संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस तरीरका सम्बन्ध होतेही. उकरडीपे डालने जैसे बन जाते हैं !! और इस तरीरमेंसे निकलते हुये सर्व पदार्थ, घृणाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इस तरीरमें प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ हैं? परन्तु सोहम-धमें छके हुये जीव अशुचीकोही प्राणप्यारे बनाते हैं. इससे और ज्यादा अज्ञान दिशा कोनसी? उनकेही तरीरके, उनको प्यारे लगते पदार्थ, तरीरसे अलग कर

तो पाणीके उपरही रहनेका होता है: परन्तु उत्सपे को नट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, नुकाके, पाणीमें डाले तो तुर्त पातलमें वेठ जाताहै: फिर पाणीके संयोगसे उत्सके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रूप तुन्वा, अष्ट कर्म रुपये लेकर, संसारमें डूब रहाहै: उन लेपोंको गलाने, मुसुमुजन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर. कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै, उसे प्राप्त करतेहै.

१० "लोकभावना" अनन्तानंत आकाश रूप अलोकके मध्य भागमें, १४३ घनाकार राजू* जिलेक्षेत्र में लोकहैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौड़ी ब्रत नालहैं. उत्तमें ब्रत और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा है. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान हैं. जो जीव कर्म से मुक्त होते (झूटते) है: वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापी चलाय

* १,८१,२७,९७० मण लोहेके एक गोटेको एक भार कहते हैं. ऐसे हजार गोटेका एक गोटा बना कोई देना बहुत डरामें छोड़े, वो १ बरामें, ६ ग्रह, ६ दिन, ६ बरामें मित्रा सब दब्दरे से एक राजू क्षेत्र.

क्षेत्रके २००० देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं. ऐसे अन्य क्षेत्रोंमें भी आर्य नृनीकी नुन्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमें तो सदा धर्म करणी का जोग रहता हैं. और भरत ऐरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडाक्रोडी सागर सरपणी कालमें फक्त १ क्रोडाक्रोडी सागरही धर्म करणीका होता हैं. सो प्राप्त होना बहुत मुशकिक हैं. ये भी मिलगया तो आर्य-क्षेत्र, उत्तम-कुल, दीर्घ आयुष्य, पूर्ण-इन्द्रिय, निरोगी-सरीर, सुखे उपजीविक, सद्गुरु दर्शन, शास्त्र श्रवण-मनन-निव्यासन, होके भी भव्य पणा, सन्यक द्रष्टिपणा, सुलभबोधी, हलकमीं, स्वल्प संतारीपणा वगैरे जोग मिले, तब धर्मपर रुची जगे; और बौध बीज सन्यक्त्वकी प्राप्ति होवे. देखा ! कितना दुल्लभ बौध बीज मिलता हैं सो, हे भव्य जनो !! अत्यंत पुन्योदयते अपन दहोत उंचे आये हैं. बौध बीज हाथ लगा हैं (तो अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस बीजको रख, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिससे धर्मवृक्षलगे जो मोक्ष फल दें.

१२ “धर्म भावना”—“धारयेति धर्मः” पडते जीवको धर (पकड़) रखे सो धर्म. “संतारभी दुःख पडरण” संतार सागर महा दुःखसे भरा हैं. इसमें पडते

जीवको रोकके, मोक्ष स्थानमें पहुँचाये सो धर्म कहा जाता है। मोक्षार्थीको धर्मकी बहुत आवश्यकता है, वो धर्म कौनता ? जैन कहे— “वन्मो मंगल मुक्तीठं, अहिंसा संजमोतवो” अर्थात् मंगललाकर्ता, सर्वसं उत्कृष्ट धर्म योही है की जो- अहिंसा (दया) संयम (इन्द्रिय व्रत) और तप करके संयुक्त होण, वेद कहते हैं— “अहिंसा परमं धर्मः” अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म योही है की जहां अहिंसा (दया) ने समांग नियात किया है। पुराण कहते हैं— “अहिंसा लक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणी नांशः” अर्थात् अहिंसा (दया) है सो धर्मका लक्षण और हिंसा देता अधर्म है। जगन् कहते हैं— “कला तगअन्नुत्तुनन् कम्म मकावगल्लग वनात्” अर्थात् तू पशु पक्षीकी कनर तरे पेटमें मतकर, खाइवल कहते हैं— “दाउ शाल्ट नांउ क्लं” (I thou shalt not kill) अर्थात् तू हिंसा करे मत, द्रव्यादि सर्व ज्ञानोंमें धर्मका मूल ‘दया’ ही मानाया है। दयाके दो भेद, १ परदया तो ते काय जीवकी रक्षा करना, आर २ स्वदया सो अपनी आत्माको अनार्त्ताग (दुःखों) में चढ़ाना, की जिनमे अपनी जानना, आत्मिक कालमें, सर्व दुःखसे छुट मोक्षके अनन अश्व सुखनी प्राप्ता करे।

यद् १२ ही भावना, मुमुक्षु प्रार्थियोंको मोक्ष

गमन करते हुये पंक्तीयं नितरणी रूप हैं.

“पञ्चेन्द्रो योपशमता.”

१ ‘श्रोत्रेन्द्रो’=कानका स्वभाव जीव, अजीव, और मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका हैं, इनके वशमें पड़ मृगयशु मारा जाता हैं. २ ‘चक्षु इन्द्रो’=आँखका स्वभाव काला-हरा-लाल-पीला और श्वेत, रूपको ग्रहण करनेका हैं, इसके वशमें पड़के पतंग मारा जाता हैं. ३ ‘घण्टेन्द्रो’=नाकका स्वभाव सुभिगंध और दुर्भिगंध को ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड़ भ्रम्रपक्षी मारा जाता हैं. ४ ‘रसेन्द्रो’=जिह्वाका स्वभाव-खट्टा-मीठा-तीखा-फट्ट-कपायला, रसको ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड़ मच्छी मारी जानी हैं. ५ ‘स्पर्शेन्द्रो’=कायाका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा-लुक्खा-चिक्ना-कौमल-खरदरा स्पर्शोंको ग्रहण करनेका हैं. इसके वशमें पड़के हाथी माराजाता है. अब जरा सोचाए, एकेक इन्द्रिके वशमें पड़े, उनकी अकाल मृत्यु हुई; तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पड़े हैं. उनका क्या हाल होगा? कृतकर्मका बदला दुर्गतिमें जाके अवश्यही भोगवेंगे.

अज्ञानसे जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयमें सुख मा

नते है. यह अर्थ (तमारा) भी तो जरा देखीये!
 [१] जो शब्द सुननेसे सुखही होयतो गाली सुन संत-
 स क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पत्ती और ग्रहण करनेका
 स्थान तो एकही है, और जो गालीयोको दुःख रूप
 मानते है वो स्नेही लीयोंकी गाली सुन खुशी क्यों
 होते है. [२] रूप देखके प्रसन्न होते हैं तो अशुची
 देख क्यों घणा (दुगच्छा) करते है. क्योंकि वोभी कोई
 वक्त में चित को हरण करने वाला पदार्थ था! तथा
 आगमिक गालमें रूपान्तर पाके मजा देनेवाला होजाता
 है. और मर्चाही अशुचीसे नाखुष होवे तो स्त्री सम्यन्ध
 अशुची के मथनमे क्यों मजा मानते है. [३] दुग्ंध आ-
 नेमे नाक क्यों फिराना, क्योंकि वोभी एक तरहकी गंध
 हैं. रूपांतर हो मनहर हो जाती हैं. और जो सच्चेही
 दुग्ंध से नाराज होते हो तो मृत्यु लोककी
 ५०० आज्ञा उपर दुग्ंध जाती है, उसमें क्यों
 राचे है. [४] मन्यांग-मधुर रस सेही जो मुख पा-
 ते है वो तो फिर हर्काममे क्यों कहे के श-
 कर ग्याद जिसमे बुझार आगया, और घृत खाया
 जिससे खांसी होगद. जो घृत शरार जेमे पदार्थ
 ही दुःख दाना हैं. तो फिर अन्तका क्या कहे. येदक
 कहता है. "रस्साणी ते रोगाणी" अर्थात् रसका

भोग रोगकाही कारण हैं. फिर इसमें सुख कैसे माने? ५ चित मुनीने ब्रह्मदत्त चक्रवर्तसे कहा है—“सर्व आभरण भारा; सर्व काम दुहा बहा” अर्थात् सर्व भूषण (गहणें) भार भृत हैं, और सर्व भोग दुःख दाता हैं, सो सच्ची हैं. जैसे सुवर्ण धातू हैं वैसे लोहा भी धातू हैं. राजाकी तरफसे सुवर्णकी वेडीकी वक्षीस हुइ तो खुश होवे; हमें पांवमें पेहरने सोना मिला. और लोहेकी वेडीकी वक्षीस होनेसे रुदन करते हैं. इस विचारसे जाना जाता है, की भूषणमें सुख दुःख नहीं, माननेमेंही है! ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात् जेहर खाना परन्तु; जैसे विष (जेहर) और विशेष ‘य’ प्रत्यय हैतो यह जेहरसेभी अधिक घाती है. भगवंतने फरमाया है कि “कामभोगाणुरदणं अनंत संसार” बढणं, अर्थात्—काम भोगमें रक्त रहनेसे, अनंत संसार बढता है. मतलबकी—विपत्ती एकही भवमें मारता है; और विषय भोग अनंत भवतक मारतें हैं, बडे २ विद्वानोंको और महा ऋषियोंको बाबला बनादेता है. ऐसा दुरुधर जेहर है. विषय सुखकी इच्छा कर, भोगवते हैं, परन्तु क्या २ हानी होती है सो देखो, शक्ती, बुद्धी, तेज, स्तव, इनको नष्ट कर, अत्यंत लुब्धतासे, मुजाक आदी

डिसंवेदंभिः इच्चैवं जाण सव्वेजीवा, सव्वेसभूता, सव्वे
पाणा, सव्वेसत्ता. दंहेनवा जाव क्वालेणवा आउट्टि-
ज्जमाणावा. हम्ममाणावा. तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्ज-
माणावा, परियाविज्जमाणावा. किल्लविज्जमाणावा. उद्द-
विज्जमाणावा. जाव लोमुखणणमायमवि; हिंशाका रगं
दुग्धंभयं पडिसंवेदंति. एवं नच्चा सव्वेपाणा जाव सत्ता
णहंतच्चा. ण अज्जावेयच्चा. ण परिघेतच्चा; ण परित्तावे-
यच्चा; ण उद्दवेयच्चा; ॥श्री॥ से वेमो जेय अतिता. जे-
य पडुपत्ता. जेय आगमिस्सामि. अरिहंता भगवंता. स
व्वेते एव माइक्वंति. एवं भासंति. एवंपरुवंति सव्वे
पाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतच्चा ण अज्जावेयच्चा.
ण परिघेतच्चा; ण परित्तावेयच्चा, ण उद्दवेयच्चा. एसे
धम्मे धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयत्तेहि पवे
दंति.

अर्थ,—द्वादश जातकी प्रपदार्थें भगवंत श्री
तिर्थकर देवने, निश्चयके साथ फारमाया हैकी; छे जीव-
कायोंकी हिंशा—कर्मबन्धका कारण है. वो छे जीवका
याके नाम कहतेहै, पृथ्वी. पाणी, अग्नी, वायू, विन-
स्पति, और त्रस, इनको दुःख देतें, जैसा दुःख होताहै
वो ह्यां द्रष्टांत करके बतातें है. “जैसे ७ मुजे अस्माता-

* खुद श्री महाबार परमात्मा अपनेहीको बन्धके फरमाते हैं।

देव दंडमे, हड्डिमे, मुष्टीमे, पथरमे, कंकरमे, मुजे मारते, तर्जना-ताडना करते, परिताप उपजाते, दुःख दे-
 देते, उद्देग उपजाते, या जीव काया रहित करने, जाव
 तु सर्गरेपेका रोम (बाल) मात्रभी उखाडते, इन हिं
 शाके कारणोंमे जैसे दुःख और डर भोगेको होता है,
 ऐसीही जाणो-मय जीव (चंचर्डीयों) को, सर्व भूत (वि
 नास्पति) को, सर्व प्राणी (चन्द्रा नन्द्री चौरिन्द्री) को
 और सर्व मत्व(पथर, पाणी, अग्नी, वायु)को दंडमे मारते
 जावतु कंकरमे मारते, अक्रोश, ताडन, तर्जन करते, प-
 रिताप उपजाते, किलाभणा (दुःख) देते- उद्देग
 उपजाते, जावतु जीवकाया रहित करने रोम मात्र
 उखंडतेभी, इन हिंशाके कारणोंमे वो जीव
 दुःख और डर भोगे ऐसीही मानते हैं-अनुभवते
 हैं, ऐसा जाणने नव प्राण भव, जीव, मन्वको
 मारना नहीं, दंडमे ताडना नहीं, बलत्कार जबर
 दस्तीकर पकडना नहीं, या किसी काममें लगाना
 नहीं, मर्गरी, मानसीक दुःख उपजाके परिताप
 देना नहीं, किंचितही उपद्रव करना नहीं,
 और जीव काया रहितभी करना नहीं, ऐसा उ-
 पदेश गयेकालमे जो अनंत निरर्थक हुये वृत्तमान-
 कालमे जो विद्यमान है, और आवने कालमें अ-

नंत तिर्यकर होयंगे उन सबहीनें ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहै ऐसा परुषा है, ऐसा उपदेश दिया है, की—“सर्व प्राण भूत जीव सत्त्वको, मारन ताडन, तरजन परिताप, करना नहीं, बंधनमें डलना नहीं, सरीरी मानसी दुःख उपजाना नहीं, जावत् जीव काया रहित करना नही, येही धर्म दया मय निश्चल है. नित्य है. शाश्वता (सनातन) हैं. इन वचनको विचारनाकी सब जीव वेचारे कर्मोंके बशमें हो दुःख सागरमें पड़े है, उनके दुःखको जाणनेवाले खेदज्ञ. ऐसैं श्री तिर्यकर भगवानने फरमाया हैं. की सबकी दया पालो! रक्षा करो!!

ॐ कल्याण कोडिजणणी, दुरंत दुनियाखिगाठवणी.
ॐ संतार भवजलतरणी, एगंत होइतिरिजीवदया-

अर्थ—क्रोडो कल्याणकों जन्म देने वाली. दुर-
दंत दुरित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषों-
के स्थान रूप. संतार महा सागर कों तारने नाव स

ॐ दीर्घदृष्टिने महा दयाल श्री तिर्यकर भगवानके वचनोंकेनर्क
नम दीर्घाये! खुद भगवानही फरमाते हैंकी, छे कायको दिये
करनेसे उन्हे मोहती जैसा दुःख होताहै! ऐसे दयाल प्रभुको छेही
काया की दिये का खुदा करना चाहतेंहैं यह दिन्नी जव्वर
माहे दिये !!

मान. इत्यादि अनेक सूकायोंकी करनेवाली श्री जीव दयाही हैं.

‘दयाही धर्मका मूल है,’ सर्वमत मतांतर एक दयाकेही सारेसे चलरहे हैं. दया-अनुकम्पाही सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दयाको धर्म-ध्यानी आपणी आत्मामें सदा निवास देते हैं, अर्थात् सदा दयाद्र भाव रखते हैं. ७

दयालु अन्य जीवोंको दुःखीदेख करुणा लाते हैं. घस स्थावर जीवोंको सरीरिक (रोगादिक) और मानसिक (चिंता)से पीडित देख, करुणा लावे. जैसे अन्धों कोइ दयवंत किसी बधीर (बैरे) को देख, विचारते हैं की, इस बेचारेके कैसा पापका उदय है, की यह सुण नहीं शक्ता है. बधीर और अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती है. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सो-

॥ श्रेणिक राजारामुत, हार्थी भवदया पावो; मेदराय दयकाज, माददीपो मरणो, धर्मरुचीदयाचार, करगयाखेरापार; श्रेणिक पडरवजायो, सूयमें निरणो; नेमजांने दया पावो, छोटरी राज लनारो; मेतारनदयापाठ भेट दियोमरणो; तेवीसमां निनगाय, तापसके पासजाय. जीवने बचायदीयो—नवकारकुसरणो; मवै-योंसवापो कीपो घट्टाग्रीनामदीयो; जीवदया धर्मपालो, नो ग घावो निरणो. १ छपारमजी महाराज.

गले पीडाते देख, बहुत दया आती है, तेसेही बेचारे तिर्यच (पशु) अन्न वत्त गृह रहित निराधार है, पराधीनतासे क्षुधा-त्रया-शक्ति-तापआदी अनेक दुःख भोगवते है, तिर्यच पंचेंद्रीसे चौरिंद्रीकों दुःख ज्यादा है क्यों कि वो एक इन्द्र रहित है. चौरिंद्रीसे तेंद्रीमें, तेंद्रीसे, वेंद्री. वेंद्रीसे एकेंद्रीमें और एकेंद्रीसे निगोद (कंदमूलआदी)में दुःख अधिक है. क्यों कि ये एक सरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते है.

एक महोर्त (४८ मिनट) में ६५५३६ जन्म मरण करते है. इत्नी बेवसी है की, दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्ती दूर रही, परन्तु अपना दुःख दूसरेको दर्साभी नहीं शक्ते हैं! बेचारे कर्तकर्मके फल भुक्तें है. और उनकी घात करनेवाले बेसेही नवे कर्मोंका बंध करते है; वो भोगवते उनके. भी ऐसेही हाल होते है. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले, फक्त एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंअहै. वोही सब जीवोंको अभय देते हैं,९ नहीं तो सब स्यान् घमशाणमच

✽ एकेंद्रीकी दिशासे वेंद्रीकी दिशामें पाप ज्यादा, वेंद्रीसे तेंद्रीकीमें. तेंद्रीसे चौरिंद्रीकीमें, और चौरिंद्रीसे पंचेंद्रीकी दिशामें पाप ज्यादा. इसका मतलब यह है की, जो उच्च स्थिति को प्राप्त हुये है वो अनंतानंत पुन्यकी वृत्ती होनेसे; जैसे गरीबको गला

रहा है. मेरे जन्मर पुन्य है, की श्री जैन धर्मका ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ. सुवर्गदायक सूत्रमें फगनाया है की "एयं खु णाणीणो सारं, जन हिंसइ किञ्चणं" अर्थात् निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है की, किञ्चित् मात्र जीवकी हिंसा नहींज करना! इस लिये अब मैं, सब जीवोंको त्रिजोगकी विशुद्धी से अभय दानका दाना बनू. सबके धैर विरोधसे निवृत्त के फिर मुझे मोक्षमें जाने कोईभी किसी प्रकार की हरकत करने समर्थ न होंग इसीही मोक्ष का सच्चा हेतु है.

“बन्ध”

कर्म बन्धनसे छूटनेनेही जीव को मोक्ष मिलता है, इस लिये सुमुख का बन्धका वर्णन जाणने की आवश्यकता है वह बन्ध के कारण सूत्रमें ४ बताये हैं. सो-“पयइ’ठिइ’रस’पणसा” अर्थात् १ प्रकृती बन्ध, २ स्थिती बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश बन्ध,

देनेसे कोई गिनतामें नहीं लाता है, औरबड़ेको गार्थी देनेस बड़ संकटमें पड़ जाता है, तब. तथा जिन्नी उब स्थितोंका पाम हुब है, उतनेही आत्म कल्याण के नजीक आयें. उनको, माननेमें उन के बान्ध कल्याण का ज्वार नुकसान करना है, तथा एकैद्रीकी धान बिन ग्रस्य वासनहीं चरना है

यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डू) के द्रष्टांत से कहते हैं।

(१) 'प्रकृतीबन्ध' का स्वभाव-जैसे सूठादिक से निपजें मोदकका स्वभाव होता है की; वायुनामें रोगका नाश करना; तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है की; ज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३ वेदनीसे निराबाध-सुखकी हानी, ४ मोहणीसे सम्यक्त्वकी हानी, ५ आयुष्यसे अजरा मर पदकी हानी. ६ नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७ गोत्रकर्ममें अखोडकी हानी, और ८ अंतराय कर्ममें अनंत शक्तीकी हानी होती है.

(२) 'स्थिती बन्ध' का स्वभाव, जैसे वो मोदक महीनादी काल तक टिकते हैं. तैसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अंतराय, यह उत्कृष्ट ३० क्रोडाक्रोड सागर. मोहक ७० क्रोडाक्रोडी सागर आयुष्यकी ३३ सागर और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट तिथी २० क्रोडाक्रोड सागरकी हैं. (३) 'अनुभाग बन्ध' का स्वभाव, जैसे उन मोदकमें कोइ कड़ूवा होवे, कोइ मीठा होवे. तैसे ज्ञानावरणी, सूर्यको बदल ढके जैसा. दर्शनावरणी-आँखका पट्टा बन्धे जैसा. वेदनी-मद्य(सेहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी-मणिग

के नशेके जैसा. आयूप्यखोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा
गौत्र-चित्रकार जैसा; और अंतराय पहरायत जैसा है.
(४) 'प्रदेशबन्ध'का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोड़ दु
गणी, और कोड़ निगुणी सकरके होते हैं, तैसे कितने
क कर्मका बन्ध स्थिर (ढीला) और कितनेका निबड
(मजबूत) होता है, कोड़ नहश थोड़ी स्थितीवाले, और
कोड़ दीर्घ (लाम्बी) स्थितीवाले. होते हैं.

इन चार बन्धमेंसे, प्रकृती और प्रदेश बंध तो
योगोंसे होता है. तथा स्थिती और अनुभाग बन्ध
कषायोंसे होता हैं. इन बन्धनसे जीव आनादीसे ब-
न्धा है. किसीको निव्ररसोदय, और किसीको मंद र-
सोदय हुआ है. ऐसे जगतवासी जीवोंके देखते हैं की
कोड़ क्रूर प्रकृती वाले, और कोड़ क्षांत प्रकृतीवाले,
कोड़ दीर्घायुपी तो कांड़ अल्पायुपी, कोड़ सूर्ययोगी
तो कोड़ दूरसंयोगी, और कोड़ सूर्य सूर्यस्थानी तो
कोड़ दुर्ग सूर्यस्थानी. इत्यादीके प्रसंगसे अच्छेपे रा
ग और बुरेपे देश नहीं करना, क्योंकि बोधेचारे क्या
करें, जैसा २ जिनके बन्धोदय हुआ है. वैसा वैसा
संयोग बना है, इसे पलटानेकी उनमें सत्ता है. जो
अपन उनको खोड़ीले कहे! इत्यादि विचारसे, स्व-
भ्रन्धी, श्रेष्ठ, नष्ट, संयोग, वियोग, को देख, धर्म ध्यानी

समभाव रखते; जिससे सदा परमानंदी, परम सुखी बनें रहें.

“मोक्षगमना”

पहले जो बन्धका वर्णन किया. उस बंधसे मुक्त होवें (टूटे) उसेही मोक्ष कहते हैं. जैसे बन्धनके योगसे तुम्हा पाणीमें डूबा रहना है और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्हका पाणी उपर आके ठेहरनेका स्वभाव है. तैसेही जीव कर्म बन्धनमें टूटनेही, मोक्ष-स्थानमें जा ठेहरनेका स्वभाव है. वह मोक्ष स्थान, लोकके नव्याभागमें जो ब्रह्म नाल १४ राजू लम्बी है उसके उपर अग्रभागमें. एक तिद्ध शिष्टा, ४५ लक्ष योजनकी लम्बीचौडी (गोलपताने जैसी) नव्यमें ८ जोजन जाडी, कम-होती २ किनारेदे अत्यंत पतली है. श्वेत सुवर्णकी है. उसपे एकही जोजन लोक है. उस जोजनके ऊपरके छठे विभागमें तिद्ध स्थान मोक्षस्थान है. वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रवेश नस्यित (रहें) हैं. जलोकको लगे हैं. दो तिद्ध भगवंत बैठे हैं.

इ जैसे पाणि नाला इन तुम्हा आगे जाता नाली में मोक्ष हा धर्मानिके अन्तर्गत विव जीव मोक्ष (मोक्ष) के अन्तर्गत लोकमें जा सजा रहे हैं.



अत्मा पादानमिदं स्वयं मतिशय व ह्रीत धार्ध
विशालं वृद्धी-हाम व्यापेनं विषयाविरहितं निष्प्रति
द्वन्द्व भावम्. अन्यद्रव्या नपेक्षं निरूपं मामितं
शाश्वतं सर्वकाल मुत्कृष्टा नन्तसारं परम, सुख
मतस्तस्य सिद्धस्य जातम् १

अस्यार्थ—श्री सिद्धप्रमात्मा, निजात्म स्वरूप
संस्थित. स्वयं अतिशय युक्त, अव्यबाध (सर्व व्याधा
निर्मुक्त) हानी वृद्धी रहित. प्रतिपक्षिकता वर्जित. अ-
नौपम=किसीभी द्रव्यकी ओपमारहित. ज्ञानादीकी
अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व काल उत्तम. परम सा
रयुक्त इत्यादी अनंत सुख सिद्ध परमात्मा बिलसतें हैं.

औरभी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भु-
क्ते हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फल कह-
ने रूपही हैं. परिणाम उनका दुःख रूप इन्द्री के
विषय को पापणमें दुःखही होता है, सो पहीले
घटाई दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख
के भुक्ता हैं.

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट हो
नेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शिवर्णियके ना-
श होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनिय क-
र्मके नाशसे निरावाध सुखके भुक्ता हुये, मोहनिय

कर्मके क्षयसे शुद्ध क्षायिक सन्यक्त्वी हुये. आयु-
प्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके
नाशसे, अरूपी हुये, गोत्र कर्मके नाशसे खोड (अप-
लक्षण) रहित हुये. और अत्राय कर्मके क्षयसे, अनंत
दानलब्धी, लाभलब्धी, भोग लब्धी, उपभोग लब्धी
और अनंत बलविर्य लब्धी, के धरनहार हुये. ऐसे
अनंत गुण सिद्ध भगवंतके हैं. उनका ध्यान ध्यानी
करे.

“गति गमना”

पांच गतिमे गमन करनेके २० कारण— १ म-
हारंभ=सदा व्रत स्थावर जीवोंका आरंभ (धमशाण)
हो, ऐसा कारखाना चलावे. २ महा परिग्रह=महा
अनर्थ से द्रव्योपारजन करता अचके नहीं. और “च-
मडी जावो पण दमडी मत जावो” ऐसा लालची.
३ “कुणिमाहारी” मांस मदिरादी अभक्षका भक्षक
४ पंचेन्द्रिय बधक=मनुष्य पशुका घातिक. इन चार
कर्मोंसे नर्कमें जाय. ५ माया=दगावाज. ६ निवड मा-
या=मीठा ठग, धूर्त. ७ मच्छरी=शुणीका द्वेषी. ८
कुड माणे=खोटे तोले मापे रखे. इन ४ कर्मोंसे
तिर्यच (पशु) गतिमे जाय. ९ भद्रिक=सरल

रहित.) १० विनीत—नम्र फौमलं स्वभावी मिलापु
 ११ दयाल—दुःखी देख करुणा करे, यथा शक्त मुख
 देवे. १२ 'अमल्लरी'—गुणानुरागी शुभउन्नती इच्छक.
 इन ४ कर्मोंसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग संयमी'
 शरीर शिष्य, उपग्रहणपे भ्रमत्व रखने वाले साधू.
 १४ 'संयमा संयम' भावक. १५ 'बालनपस्वी' हिंसा
 युक्त तप करने वाले (कंद भक्षादी) १६ 'अकर्म नि
 जेरा' परवशम दुःख सहके मरने वाले, इन ४ कामों
 से वेवता होय. १७ ज्ञान—जीवादी १, पदार्थ जाणें.
 १८ दर्शन—यथार्थ श्रद्धावन्त. १९ चारित्र—शुद्ध संय-
 मी [साधू] और २० तप—ज्ञान युक्त तपश्चर्या करने
 वाले. इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन २० कामों
 में से धर्म प्यानी ४ गति के १६ कामोंको छोड़ मोक्ष
 गमन जाने के ४ कामोंका साधन करे.

“हेतु”

संसार के हेतु ५७ हैं— २५ कदाय. १५ योग
 १२ अनुन. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ द्रुये. इनका विस्तार
 २५ कदाय— १ अनुनान धर्मी क्रोधः परपर की
 तपस्य जित्त. (कभी मिटने नहीं) २ अनुनान धर्मी मा-
 न—परपर के स्थंभ लेना (कभी नहीं नेम) ३ अनु-

तान वन्धी माया= वांशकी जड़ जैसी (गांठमें गांठ)
 ४ अन्तानवन्धी लोभ= किरमजी रंग जैसा
 (जले तो भी न जाय) [ये मिथ्यात्वी नर्क में जाय]
 ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध= धरती की तराड (वर्षादि
 से मिले) ६ अप्रत्याख्यानी मान=काष्ठ स्थंभ (मेह-
 नत से नमें) ७ अप्रत्याख्यानी माया=मीठाका शृंग
 (आंटे दिखे) ८ अप्रत्याख्यानी लोभ=खंजरका रंग
 (क्षार से निकले) ९ [ये देशवृत्त घाती. तिर्यच में
 जाय] प्रत्याख्यानी क्रोध= रेती की लकीर, हवा से
 मिले. १० प्रत्याख्यानी मान=त्रैत स्थंभ (नमाये
 नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया=चलते बेले का मुत्र
 (घांक साफ दिखे) प्रत्याख्यानी लोभ=कादवका रंग
 (सूखने से अलग हो) [यह सर्व वृत्त घातिक मनुष्य
 होय.] १३ संजलका क्रोध=पाणी की लकीर. १४ सं-
 जलकामान=वणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=वांशकी
 छूती. १६ संजलका लोभ=पंतंगका रंग (यह केवल ज्ञा-
 नका घातीक, देवता होय) १७ 'हांस'-हँसे, १८ 'रती'
 खुशी, १९ 'अरती'-उदासी. १० 'भय'-डर. २१ 'शोक'
 चिन्ता, २२ दुर्गच्छा. २३ स्त्रीवेद. २४ पुरुष वेद. २५
 नपुंशक वेद, यह पञ्चीसही कर्पाय कर्मके रसको आ-

स्मापे जमाती हैं.

१५ जोग—१ सत्यमन, २ असत्यमन, ३ मिश्र मन, [साचा झूटा भेला] ४ व्यवहार मन, ५ सत्य (साचाभी नहीं झूटाभी नहीं) भाषा ६ असत्य भाषा, ७ मिश्र भाषा, ८ व्यवहार भाषा. ९ उदारिक—सप्त धातु मय, मनुष्य, तिर्यंच, का सरीर, १० उदारिक मिश्र—उदारिक उत्पन्न होते, या बेक्रय करते वक्त मिथ्यता रहे. ११ बेक्रय—शुभाशुभ पुत्रलौसें बना, नर्क, देव, का सरीर १२ बेक्रयमिश्र बेक्रय उपजे तब, या उत्तर बेक्रय करे तब मिथ्यता रहे, १३ अदारिक—पूर्वधारी मुनी संशय निवारने आरम्भ प्रवेशका पूतला निकाले सो. १४ आरिक मिश्र—पूतला निकालते व समायते वक्त मिथ्यता रहे. १५ कारमाण जोग प्रथम सरीरको छोड दूसरे सरीरमें जानी वक्त घलावू रूप साथ रहे सो. यह १५ योग कर्मोका अकर्षण करते है.

१२ "अकृत" (१-६) पृथ्वी, पाणी, अग्नी, वायु, इन्द्रिय और श्रम. [इन छे कायकर जिन्ना प्रारंभ] (७-१२) धन, वस्तु, घन, रस, स्पर्श और मन [इन

मेमे जन्मा मो नेक वर्गी और कई दीवा नछे ज्ञान की बातें और कई प्राय जावा.

छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जन्ममें होता है. उन) की अवृत्त समय २ अपचखाणीके अती है. और कर्मका बन्ध करती है. देखीये इंद्रियों पोषणे अनेक पचेंद्रिय. का कट्टा कर चमडा लाते हैं. और घाजिंत्र मंडाते हैं. धातु गलाके कशाल. भंभा प्रमुख बनाते हैं. अनेक मनहर स्थान वत्त. भुषण. भोजनादी सामुगृही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मद्रा, मांस अभक्षका अहार, परस्त्री वैद्यागमन. इत्यादी एकेक कर्म के पाप के सामे जो दीर्घद्रष्टी से विचारते हैं तो बेचारे पृथ्वीयादी जीवोंका घमशाण द्रष्टी पडता हैं. (१) एक वत्त निपजाणे. पृथ्वी का पेट हलसें खीरना. और खेती में खात न्हाख उसमें असंख्य व्रतस्थावर कट्टा. निदाणी प्रमुख अनेक खेती के पाप से झाड होवे. कपास लगे उसे चूट भेलाकरे. फिर गिरनी पे लोडावे, जावत वत्त तैयार होवे वहां तक असंख्य व्रत स्थावरों का घमशाण हो जाय. फिर रंगण कर्म वगैरे होवे वहां का पाप विचारिये. ऐसे महा अनर्थ से एक वत्त निपजता हैं. तैसेही भुषण को देखीये. धातुर वादी धातु से मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला घाट घड उज्ज लादी क्रियामें किला आरंभ होता है. ऐसे भोजन म कान वगैरे संसारके अनेक कायोंको, अलग २ उत्पत्ती

मे उद्योग मे आवे वहाँ तक के पापोंके तर्फी द्रष्टे ल-
गाने मे रोमांच होने हे । ऐसा महा पाप करके यह
समसार भरा हे और एक ॥ ११॥ मे द्रष्टे लगाके देखो
किता जुलम निषजना हे । किन्हेक पाप मे अपने जाण
मे होत हे और किन्हेक महा पाप लगाके पातकोंमे
अपने शरीर भा नदी मे ना नी उतरकी अवत (पा-
पका दिव्या) अपना पाप मे जीता हे लग रहा हे ।
जम धरके किमा न लगा । ॥ १२॥ जाणे देखे,
और जिस मनर्भा रुचरा घरमे रु । ॥ १३॥ मेमे वि-
न पशुवाण किये पाप आत्माका लगना ॥ १४॥ ऐसा जाण
मुमुक्षु जीयाका याहो अवत गहना बार्हाय

॥ १५॥ मिथ्यात्व । इस जीवन मे समारम अनन
परिश्रमण किता इसका हन मिथ्या है हे यह दृ-
ष्टा बहुतहा मुर्दाकिन्हे ॥ १६॥ । ॥ १७॥ काळका
मायने हे और इसमे द्रष्टे विन मान नदी मिन्हे ड-
मक दिव्य समुद्र का डन का पानान जहा रही करना
बार्हाय । इनके मुख्य ॥ १८॥ हे

॥ १९॥ अभिषेक मिथ्या व ॥ २०॥ । ॥ २१॥ पदा पदा पा-
न कर अर्थानु जा अज्ञान मद । ॥ २२॥ मान माया
लाभ रति, अर्गति निद्रा शाक । ॥ २३॥ चरगे मग्ग
भय, हिंसा, प्रेम, क्रिडा । ॥ २४॥ दास, दास, युक्त, दास ॥

न्हे सत्देव माने, और इन १८ दोष रहित अरिहंत देव हैं उन्हें सत्देव माने. ऐसेही हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह, पंचेंद्रीके विषय भोगी चार कषायमें उनमत्त इन दुर्गुण युक्त ज्ञान दर्शक चारित्र तप विर्य [पचाचार] इर्या, भाषा, एषणा अदान निक्षेपना, परिठावणिया (यह जुनती) मन, वचन, काय, की गुती इन सद्गुणो रहित उनको गुरु माने. हिंशा, झूट, चोरी, मैथुन, परिग्रह कोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, चुगली निंदा हर्ष; शोक रात्री भोजन मिथ्यात् यह अठा रह कामोंमें धर्म माने, और इससे सुलट जो हैं उसे अधर्म जाने. ऐसे तीनही कुतत्वका पक्का कदाग्रह धारण किया पूछे से कहे हमारी पीडीयों से यह धर्म चला आता है. इसे हम कदापि नहीं छोड़ेंगे. ऐसा हठ ग्राही होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्वी.

२ "अनाभिग्रह मिथ्यात्व" = सूदेव. कुदेव सुगुरु दूगुरु, सुधर्म, कुधर्म सबको एकसा (सरीखा) समझे के बंदे पूजे सत्यासत्य का निर्णय नहीं करे, कोइ समजाय तो कहेकी अपनको इस झगडेसे क्या मतलब, सब महजबमें बडे २ विद्वान गुणवान बैठे हैं. तो किसे झूटा कहे सब अच्छे हैं.

३ "अभिनिवेशिक मिथ्यात्व" = कूदेव, गुरु, धर्म

और शास्त्रका किर्मी मत्संग करके यथाथ समज जाय
की यह ख्याती है परन्तु लोकोंकी कृत्तगुरुओंकी शरम
में पड़ उन्हें छोड़ नहीं। विचार की जाँ में इसे छोड़ दे-
वंगा तो मेरे गुरु और मित्रों स्वजनो मुझे ठपका देंगे,
निंदा करेंगे, और इस महजब के तो ह्यां बहुत लोक
हैं, मुझे आगवाही कर रखा है, सर्वमंर श्रुति में च-
लते हैं, मेरा मान महान्म स्वयं यदा है, जो मैं इसे छोड़,
देव तो स्वयं बदलके निंदा अपमान करेंगे, इत्यादि वि-
चार में ख्याती का ख्याती जाणना हुआ ही छोड़
नहीं, अपना जन्म कार्या धार डूब रहा है, उसका उ-
में बिलकुल हिकार नहीं गेमे भारी कर्मी जीवको
अभिनिवेशिक मिथ्यायी कहना।

४ "संशय मिथ्याय" = किन्तु अज्ञात जीव,
नया अज्ञानी किर्मी पुण्य योग्यमें जैन धर्म तो पागंध,
जैन के शास्त्र मुणो, क्रिया कर परन्तु कि कि गहन
धानो नहीं जयनेमं शहा कर की सुदूर अमर्षितनी ज-
गाम अनंत जीव पाणीकी वृद्धमें अमम्याने जीव, पूर्व
पन्थारम और सागरापम का आयुष्य, हजारों, लाखों
धनुषकी अवगदना नगरियोंका प्रमाण और वस्ती,
चक्रुर्वाकी श्रुति और प्राक्रम लब्धिया भृगाल्म खगो-
ल का हिंसाव तथा अरुणी जीवगर्भी सुक्ष्म जीवो.

और मोक्षके सुख तथा आस्तित्व वगैरे २ बातोंमें वैम लावे, के यह असंभव बातों सच्ची कैसे मानी जाय. प. रंतु यों नहीं विचारे की यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे वचन मेरी लोटे जैसी बुद्धीमें कैसे समावे. वितराग पुरुष भिथ्यालाप कदापि न करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा द्रष्टी आया वैसा फरमाया. और सच्च है अच्ची १ जो क्रोड औपधी के चूर्ण का राइ जिले विभागमें भी क्रोड औपधी का अंश समजते है, यह तो करतवी है, तो कुदरती कंदमूलके टुकड़ेमें अनंत जीव होवे उसमें क्या आश्चर्य? २ अच्ची भी हाथीका बड़ा और कुंथवेका छोटा सरीर होता है. वैसे ही गत कालमें मनुष्यादी की ज्यादा अवयेणा और ज्यादा आयुष्य होवे उसमें क्या आश्चर्य? ३ तथा हाथी बहुत दूरसे दिखता है और कुंथवा नजिककाही मुशीबत से दिखता है. उससेभी ज्यादा सुक्ष्म पृथव्या दिक्के जीव होवे और वो द्रष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य? ४ अच्ची भी अन्यस्थानोंमे बड़े २ शहर हैं तो प्राचीन कालमें १२ योजनके नगर शहर होवे उसमें क्या आश्चर्य? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्तीसिं शंका लाते हैं; परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजिये अच्ची भी क

हीं ६ को और कहीं २० को कोड़ी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी बड़ी संख्याको कोड़ी कहते होंगे. ६ अश्वी भी एकेक गिनिटमें हजारों का व्याज आवे, ऐसे श्रामंत बैठे हैं. तो उस वक्त इभपति आदी होवे उसमें क्या हरकत? ७ अश्वी भी लोहेकी शांकल तोड़ने वाले मनुष्य हैं, तो गत कालमें अनंत बली होवे उसमें क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः कितने देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं; और जो द्वीप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हें प्रकाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चाहिये. ९ आँखसे बिन देखे शब्द गन्ध आदी से ग्रही वस्तुको कबूल करे, तो फिर अरूपी पदार्थ को बिन देखे क्यों नहीं माने. १० धृति भोगव करके भी उसका स्वाद नहीं कह सके हो, तो मोक्षके सुखका वर्णन मुखसे कैसे हो सके, भोगवे मोही जाने. इत्यादि स्पुल विचारोंसे कितनेक स्थूल बातोंका निर्णय हो सके, और कितनेक अग्रह्य बातोंका निर्णय नहीं भी हो सके तो भी सन्यस्त्य द्रष्टी वितरागके वचनोपे आस ना रखते हैं. जैसे जवरीके कहनेसे लाग्य रूपके हीरे को लाग्यहीका मानने हैं. और मिथ्यास्वी शंशय में

पड सम्यक्त्व गमा देते हैं. सो संशयिक मिथ्यात्वी.

५ "अनाभोग मिथ्यात्व" = ऐकांत जड मुढ, न कुछ समजे और न कुछ करे. धर्माधर्म के नामकों भी नहीं पहचाने, जैसे ऐकेंद्रीयादी जीव अव्यक्तव्य (अ-जाण) पण से है. सो अनाभोग मिथ्यात्वी.

मिथ्याका अर्थ झूटा होता है. अर्थात् सत्यको असत्य. और असत्यको सत्य श्रधे, सोही मिथ्यात्व है. इसे बुद्धिको भ्रष्ट बना के आत्म हितका नाश करने वाला जानके ध्यानी त्यागते हैं.

यह धर्म ध्यानका आज्ञा विचय नामे प्रथम पायेका फक्त एकही गाथा का सविस्तर अर्थ यत्किंचित् वरणव किया. इसमें से ज्ञेय (जाणने योग्य) को जाणें. हेय (छोडने योग्य को) छोडे. उपादेय (आदर ने योग्यकों) आदरे अङ्गीकार करें.

औरभी भगवानकी आज्ञाका चिंतवन करेकी बहुतसे शास्त्रमें साधुओंके लिये फरमाया है. "संयमेण तवसा अप्पाणं भाव माणे विहरइ" अर्थात् पांच स्थावर तीन विहेंद्री; पंचेंद्री, और अजीव(बल पात्र) इनकी यत्ना करे. मनादी त्रीयोग वसमें करे, सबके साथ प्रीती (मैत्री भाव) रखे सदा उपयोग युक्त प्रवृत्ते दिनको द्रष्टीसे और रात्री को रज्जुहरणसे पूज(झाडे)

के हरेक वस्तु काममें ले. अयोग्य वस्तु यत्नासें एकांत परिठावे (डालवे) यह १७ प्रकारके संयम और असण दो घडी, या जाय जीव अहार लागे. २ उणोदरी= उपार्था और कपाय कमी करे. ३ भिक्षाचारीसे उप-जीवे. ४ रम (विगय) का परित्याग करे. ५ कायाको लोचार्दी क्लेश दे, ६ प्रतिनिधित्ता=इन्द्रियों कपाय योग, को प्रवृत्ता घटावे ७ लगे पापका प्रायश्चित्त ले शुद्ध हावे ८-१२ विनय वयवच्च, सज्जाय, ध्यान, का उत्तमर्ग करें, यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपनी आत्माको भावने (आत्मामें रमण करते) हुये विचारे प्रवृत्त.

और भी भगवानने श्री उन्नगध्वंयनजी सूत्र में कहाया है की "समय गोमय म पम्माय" अर्थात् हे गौतम तथा मुमुक्षु जीवों अनम माधन मोक्ष प्राप्त करने के उपाय के कार्य में किंविन समय (वक्त) भी प्रमाद मत करो!

“पांच प्रमाद.”



मद विषय कपाय, निदा विकटा पंच भणैया.

मद पंच दमनय, जोदा नदुति भणार.

१ मद=ज्ञानि. कुल, वल, रूप, लाभ. ज्ञान



अथ—एतन्निमित्तं कुरुते कुरुते ॥

॥ १० ॥ अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

अथ कुरुते कुरुते ॥ १० ॥

वस्तु धोड़े मेंही समझीये की, जेने २ राग और द्वेय शिष्टता (जल्दी) से कमी होंगे. ऐसी २ प्रवृत्ति करो ! येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमें प्रवेश करनेसे भिष्यात्वादी अनादी मलका नाश कर, चेतन्य को प. विन्न बनाने जलवत् है. आधी, व्याधी, उपाधी रूप ज्वालासे जलते जीवको शांत करने पुष्करावर्त मेंधवत् हैं. अत्यंत गहन संसार समुद्रसे तारने सफरी झाज वत् हैं. मोह वनचरो के नाशके लिये केशरीसिंहवत् बुद्धी बीजेक बढ़ाने को सस्वर्तीवत्. योगीयोके मनको रमाणे शांत आवास हैं. इत्यादी अनेक गुणोके सागर आज्ञा विचय का चिंतन धर्म ध्यानीं सदा करते हैं.

द्वितीय पल-"अपाय विचय"

अप्पाणं मेव जुञ्झाहिं, किंते जुञ्झेण वझउ;
गाथाः अप्पाणे मेव अप्पाणं, जइता सुहमे हए.

उत्तराध्याय. ९

अर्थात्—श्री नमीराज ऋषि सकेन्द्र से फरमाते हैं की, सुख इच्छको को अपनी आत्मामें रहे हुये दुर्गुणों का प्राजय करना चाहिये. अन्यके ताव बाह्य (प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है. ज्ञानादी आत्मा

मेरे शत्रु तो बड़े जबर हैं. इन्होंने तो बड़ा टाट
पाट जमा रक्खा है.

“मोहकी ऋद्धि”

यह तीन अज्ञान त्रिकोणों में घेरी हुई प्रकृती
का गूरे और चार गति दृक्जें युक्त “अविद्या” नगरीके
मध्यमें ‘अनन्यम’ महल की ‘अधर्म’ सभामें भृष्ट
मति सिंहासणों पर अति प्रचंड सर्गरका ध्वजहार, मद
मेंछका हुआ “मोहो” नामें महाराजा. अनाज्ञा
शिरछत्र. और रति अगति दार्मिकोंके पान हर्ष शोक
चमर डुलाने बैठे हैं: यह पाप पोशाकका भलका. अ-
वृत मुकटादी भूषणोंका चलका और क्रिया खड्ग मन
मुखमली म्यानमें झलकताहैं, जड़ना डाल पीछे ढल-
कतीहैं. यह इन्की माया रूप पटगगणी. चार
जज्ञा दासीयोंने प्रवर्ग अधर्मागना बनीहैं. यह काम
व कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयार्दी ७ मांडलिक म-
राजा, मिथ्यात्व प्रधान, प्रनाद पराहित. राग द्वेष
व्यापति, क्रूरभाव कोंटवाल. व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ,
यक्ष भंडारी. कुनंगदाणी. निंदक पेटल. कूकर्वाभा-
मदून. दंभ दुर्दत्त. पाखंड द्वारपाल इत्यादी मह
कर, नभा एक महाभयंकर रूपको धारण कर

चर करते हो; आपके क्या टोटा हैं! आपकी कद्र तो इस मोहकी कद्रिते सर्व तरह अधिक है. परिवार शैत्य फिर और अग्रज है. परन्तु आप शूके ताव में हो, इन्ने दिनने कभी हमारे तर्क द्रष्टीही नहीं करी तब हम बेचारे, श्रीमीके आदर विन चुपचाप बैठे. आज आपने जरा सुझाई कर, हमारी तर्फ अवलोकन किया तो सेवर सेवानें उपस्थित हुवा; और अर्ज कर ता हूं की, आपके परिवारकी खबर लीजीये, सब को संभालके हुशार कीजीये, और फिर आप हुकम दी जीये. की फिर मोह जैसे केइ शूओंको क्षिणमें न कर आपका इच्छित करें!

इला सुणते ही चैतन्य कों धैर्य आइ, और व हने लगा, प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुजे बता. विवेक—यह देखीये आपका तीन गुप्ती त्रि-कोटे से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवजे युक्त यह 'श्रवा' नगरके मध्यमें संशम मेइलकी धर्म शभामें सुमति' सिंहालग, जिनाज्ञा छत्र, और सम सन्वेग सर कर शोभता हैं. शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानो कधी सिद्धी युक्त बैठे. सुक्रिया बेथार कर रहे हैं. और वहुत परिवार आपका है. तो शहरमे प्रवेश किये केगा; परन्तु हुशारीके साथ प्रवेश करिये. क्यों कि

क्त्व प्रधान, उद्यम-प्रोहित, उपशम शैल्याधीश, शांत-
भाव-कोतवाल, शुभ भाव-नगर श्रेष्ठ, विज्ञान-भंडारी,
परमागमसे भंडार भरपुर, सत्संग-दाणी, व्यवहार पटेल.
गुणीजन-भाट. सत्य दूत. न्याय-द्वारपाल. मन निग्रह-
अश्वद्विप, मार्दव-गजाद्वीप, आर्जव-रथाद्वीप, और सं-
तोष-पायकाधीप, इत्यादी को यथा योग्य पद पे स्थ-
पत्र कर, चैतन्य माहाराजा आनंद से राजकरने लगे.
परन्तु मोह के प्रबल प्रताप रूप छाप उनके हृदय में
चमक रही थी.

एक दिन तभामें बोले की, मेरे प्यारे मंत्री-
सामंत गणो ! मैं आप के संयोग से बहुत आनंद पा-
याहू-तथापीं जब तक मोह शत्रू नष्ट न होगा. तब
तक मूजे पूरा सुख हुवा नहीं मानता हूं. इस लिये
मोह के नष्ट होनेका अव्वल प्रयत्न किया चहाठा हूं.
इत्न सुणतेही विवेकादी सर्व, नम्रतापूर्वक बोले, नाथ
की जीये शिव सजाइ. चलिये अच्ची एक क्षिण में मोह
का नाशकर, अपना इष्टिनार्थ सिद्ध कर, सर्व सुखी व-
नीये. चैतन्य का हुकम होतेही सब सुभटो मोहके
प्राजप की सजाइ करने लगे.

यह सत्ताचार प्रणाम रूप सुभट द्वारा मोहो
नृत्ने पयेकी, चैतन्यने श्रवा नगरीको संयम् मेहल यु-

क लोभ में कर, लोभ ठाट लगाया है, और अपनी
 ग्राह्य करनेकी लोभारी कर रहा है, इला सुनाते हैं,
 मोहो कोषागार हो जाता, देखा भरे पारे भिन्न
 सामांती ! अनन्त एक चैतन्य की मना किया की,
 तू यह दोग मन कर, पंखि बहया (निरलजा) इला
 रफ नीली होलेभी नहीं शरमाना है, चलिय उसे जग स
 मजा, कद करे, अपने लोभों वर, इला सुनाते हैं। भो
 हके पाखंड सेवकने के गीत भरी वजाके शैत्य, की इशार
 करी, सब सेवक चौक उठे, और अपनी २ सजाइ सजा
 मय मय बाले अभीमान होयी, बचल चपल मन अम्,
 रंगी बरंगी झणगाट करते कपट रथ, और आनखलिह
 लोभ पाखंडों के समोह से प्रभु, समझ बकर पहेल,
 क्रीक्या दोख धार, लोभ केलेइया कर काल, लोभ, हरे,
 निशान करिगले कअलाप वाजिओ के शोकारस गग
 न गजबले, कर्मोइय मोहने में प्रयाण कर, कर्म रोहण
 मारीय आ, मोह महाराजा स परिवार लड़े हूय,
 मोह की शैल्या देव-अपमयाय लच्छीपात,
 धैर्य के पास आ के उठे करने लगे, की है शोभा !
 इन दोनो पक्ष का मजल खटने, है और चेतने है की
 " मोह में पड़ित ग्राहीन भूत है, आप ऐसे लच्छीपात-
 ॥ मोहो, उगाहा अममान करना योग्य नहीं है, आप

जानते हो, उनकी शैन्यका प्रचल प्रताप की, तीनही लोकको तावे कर रखवा है. उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल हैं; वक्तपे ऐसा न हो की, आपकी शैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान होय, और राज भी जाय! इस लिये आप सन्मुख जाके सन्ध कर लीजीये. वृथो की सेवायें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हँस के बोले मैं सब समजता हूँ. जहां लग सिंह गुफामें निद्रिस्थ रहता है वहां तक ही बनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता है. समजे! बहुत कालके उडते धूलेकों, क्षिणिमें भेष दवा देता है! मर विन उस मोहको पहचानने वाला दूसरा है ही कोन? इत्ने दिन गन्म खाई, यह मेरी भूल हुई अन्यायीकी पथमाली करनाही हमारा कर्तव्य हैं!! क्या तुम नहीं जानते हो, मैं मोहके तावेमें था, जब मेरी कैसी फजीती करी हैं. उसका क्षिण २ मुजे स्मरण होता है, अब मैं मूर्ख न रहा की, पीछा उत्तकें तावेमें हो, फजीती करावूं! इत्ने दिन मेरे परिवारकी मुजे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भला हो. इस दुःखसे छोडने, उनोने सुजे युक्ती और सामुग्री व ताइ. मैं मोहके सन्मुख हो, नष्ट करने तैयार था. अच्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो

भरी शैल्युका पराक्रम देखिये, की निजिक पुन्य मोह
 महाराजा भी क्या दुर्दशा होली है, इतना कह चुनन्य
 राघव सङ्ग सिमरके पाससे, सहीप भरी गजबके शैल्य
 सज करिह, उली बक शील रसमें भरे हुये मन निमह
 अथ, वीरगुण मदमें घुमते हुये मारुव गज, सरलतासे
 शोभित आनंद रथ, और सदा सब संतोष पावतल, स
 सुनिगोरी शैल्य; क्षमा बकर, तय रूप अनेक शोखसे सज
 हो, स्वयंवर रूप नगारे घुरीते मजन रूप सगोणद्वारा
 सगोणते, वीरगुण पयमें आगे बढते तीन, शुभ लक्ष्य
 रूप लाल, पीले और श्वेत, निशाण करीते, गुणस्थान
 रोहण रणगोणमें आ सहे हुये,

दोनो मालिको का हुकम होतही संभाम सुरु है
 ना, महिकी लक्ष्मी सिंघात मंगीश्वर पक्षीस उभराव
 और अनंत सुमरके साथ, चुनन्य का सामना कर, क
 हने लगे, क्यारे चुनन्य ! तुम भरे गोलोक व्यापारि प्राक्रम
 का विरमरग होगया विचारा है, वही अनंत बक क्षोभी
 करी तोभी वशाम, लडने तैयार होहो, देख अन्धो एक
 निगम तुम निग बाणसे पवन कर पावतलमें पड़ेचाला
 है, कहेव कुतूहल, कौशल, य भरे नेत्रको देख करी-
 नी करता है, पूछा पराक्रांत करी, बाण क्षेप लडा

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये श्यामी यह मोहका मानेता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधान जीकी द्रष्टी मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब शैन्य स्थिर होजायगी, और अपनी श्रधा नगरी निर्विघन होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रश्वर पांच समकित महा जोंधें और शैन्य साथ मिथ्यात्वके तन्मुख हों. तत्वातत्त्व विचार रूपवाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी शैन्यमें जीत नगरा बजा. और मोह तो अति बलिष्ठ मंत्रीके वियोगसे अत्यंत खेदित हुये. तब 'अवृत्तराय' मोहसे बोले. आप फिकर न कीजिये. अब्बी मैं प्रधानजीका बदला लेता हूं. विचारा चैतन्य, मेरे आगे क्या करेगा. ऐला कहे, वारे उमरावोंके साथ चैतन्यके तन्मुख आ कहने लगे. रे! चैतन्य ऐसे तेरे ढोंगोंको मैंने बहुधा नष्ट किये तो भी तूं ताने होता नहीं शरमाया, आ देख मजा.

तब चैतन्यसे विवेक बोले इसे जीतने स्मर्थ अपने सर्व वृत्तिराय हैं. वो इसका क्षिणमें नाश कर संयम मेहलको निर्विघन कर देंगे. यह पुण 'सर्ववृत्तराय' तेरे चारित्र और अनेक क्षुब्ध प्रणाल सुभठोंसे प्रवरे. वैराग्य वाणके वृष्टीसे अदृष्ट जी काल धर्म

ग्राम दृश्ये, चैतन्यकी चीज हुई, और मोह तो अंधार
 चिंतनगिर हो कर देने लगा की, अथक चैतन्यसे फले
 पानी मुगलिकल है. तब 'ग्राम' विषयों के समान
 बाले. ऐसे ही चैतन्य के कई एक किसे है. मोह
 -'तरी' लक्ष्य मुनिश्रुति की भी नकलगायी बना दिव
 देन विचार की कथा गिनती ! दृष्टिगोचरक वस्तु
 ब्रह्म विवर्तता है. स्वयं अद्वैत चैतन्यकी सय

द्वैत्य भाग देता है. ऐसा शक्ति करते, एव उम-
 रात्र, और कई शुभटों से परते, चैतन्य सन्मुख
 हो करे लगे. के अब मेरे अंगसे भागके करी जा-
 या. मेरे घमंड की अंगी नष्ट करता है. तब विवेक
 बाले, ईशकी भागने उपदेश रात्रों साथ है, के उप-
 शमनरात्र चुने एव अग्रसररूप एव उमरात्र और कई
 सुभटों साथ. ग्रामरके लःमुख है. प्रणाम धारा रूप
 गौरीशक्ति वपात्र से ग्रामरका पवन किया, की चैत-

न्य ध्यानमें लीन हो मुनी हुई.

मोह, ग्रामर रात्रका मूल्य सुन, होम देवास
 भूल गये. तब कामदेव बाले, विराजो मेरे जैसे प्राक
 भी पुत्र आपके होले आप निक कर्मा करते हो, अ-
 द्वैत वातही वातमें चैतन्यकी कृपामें कर जाता है.
 कर्म सहेव के यह वचन सुन हो, प्रहृय, और नय-

शक यह तीनही उमराव खड़े हो कहने लगे की हम
 कुँवर साहेबके मदतमें जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक
 क्षिणमें गमाते हैं. तब अश्वधाधिप क्रोधजी, खड़े हो
 धमधामायमान होते बोले. कित्तिने जननी का दूध प-
 चाया की है की, जो मेरे सन्मुख खड़ा रहे. क्रोध
 राग-द्वेष, कलह-चंड, भंड विवाद यह सुभटके सामे
 टिके तब गजाद्विप अभीमानजी बोले, मैंने केइ वक्त
 चैतन्यको हीन दीन, बना दिया है, क्या अविनय मान
 मद, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका प्रा-
 क्रमी कमी है. तब रथा द्विप कपटजी कहने लगे मे
 ने चैतन्यको केइ वक्त लेंगे, लुगड़े, बुडीयों पहनाइ हैं,
 अब क्या छोड दूंगा. नाया, उपाधी, हृत्ती, गहन, कूड
 वंचन, यह मेरे सुभट कम प्राक्रमी है क्या.? यों यह
 तीनही सपरवार, कामदेवके साथ हुये, इनसे काम-
 देवका ठाठ तबसे अधिक हुआ, अनुराग रणसिंघा
 वजाते. एकदम चैतन्यपे विषय रागरूप बाणोंका व-
 र्पाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय बाण छोडने लगे,
 अभीमान जी स्थंभन विद्या डाली, दगाजी गुहरीत
 क्षय करने प्रवृत्त हुये; यह अविनासा एकदम जुलम
 होता देख, चैतन्यसे विवेक बोले आप धवराइये नहीं;
 शांती डालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निवेद

अरुत, भय, शोक, दुःख यह उमरावो सपरिवार सज हो चले.

चेतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म सभामें अपने सर्व मंडलिक और तानंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे. भाइयों! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है. वो थोड़ेमेही पार पड़नेकी आशा है. परन्तु गुप्त एलची द्वारा खबर मिली है की उपशम किल्लेमें मोहने गुप्त सुभटों बेठा रखे हैं. इस लिये किसीभी लालचसे ललचा, उस किल्लेमें कोईभी प्रवेश मत करना. रस्ते के सर्व उपसर्ग अङ्गणों सहे, क्षिण कपाय किल्लेमें प्रवेश करें की, जिससे मोहका एक क्षिणमें प्राजय कर, इच्छित काम फते हो. यह विवेक का बोध सर्वने सहर्ष बधा लिया. और तुरंत स जहो क्षिणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया.

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये. और मधुरतासे कहने लगे, अब क्यों भगते हो, हमारा सत्यानाश तो तुमनें मिला दिया. अब सब तुम्हाराही हैं, डरो मत! यह 'उपशम कपाय' किल्ला तुम्हाराही हैं. इसमें वे फिर रहो. मोह रायतो बेचारे चुपचाप बैठे हैं. अब तुम्हारा नामही नहीं लवेगे.

इन सब दंगोसे विवेक ने अब्बलही ---

किये थे, इस लिये लोभके मिटे, वचनसे कोई उगा-
ये नहीं, और आगे चलने लगे, तब लोभचन्द अस्ति-
त ही सपरिवार समझिया, और देखा! मैं भाइयोंको मार
करा जाते हो, अब मैं तुम छोड़ने वाला नहीं!। यों
कहे सर्वे शून्य युक्त चैतन्यकी शून्य पर, इहो जगत् मु-
न्द, कर्मों का पथना आशा इत्यादी बाणोंकी बुद्धी कर
ने लगे, की उसही वक्त चैतन्यने शक्ति बाणोंका प्रहार
कर लोभका सपरिवार नाश कर, वे विकर हो श्रेष्ठ
कण्य किछिम भराके परमानन्द पाये,

लोभचन्द्रका सपरिवार नाश कर श्रेष्ठ कण्य
किछिम चैतन्यने निवास किया है, ऐसी मोह की खबर
होतेही सभी दिले पड़गये, जितनेकी आशानो बुर
हो, परंतु इज्जत और जान बचना मुशीघ्र हो गया,
तो भी मानके मरोड़ आप खुद चैतन्यका प्राज्ञ क
ने खड़े हुए, तब ज्ञानावरण आदी सार महो भंड-
लिक राजा, अपने असंख्य बल बल्लेसमय हुए, सब-
साथ चैतन्यकी लफ्फे चले,

यह चैतन्यकी खबर होतेही शक्ति सम्पन्न
शक्तिपिक यथास्थित चारित्र्य, यह महो पराक्रमी रा-
जातिके साथ, करण सब, मान सब, योग सब, व
रक्त से सब हो विरानी, अकण्यो, शीघ्र हो, मज्जा

संबुडता रूप चारो तरफ वंदोवस्त कर, संपूर्ण भविता
त्म रूप मद छक हो. महाज्ञान वार्जित्रोंके झणकार
से, महाध्यान निशाण फरराते, महा तप तेज कर दी-
पते, अमोह अधिकारी पगे. अपठवाइता द्रढताधार.
क्षपक श्रेणि रूप चोगानमें सब परिवारसं परबरे खडे हुवे

चेतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद
छक हो बोला, रे चेतन्य ! तूं मेरे घरमें बडा हुवा, अनंत
काल मेरी सेवामें तुजे हुवे, निमक हरामी ! अब मेरे
सेही लडने तैयार हुवा, यह तुजे जो ऋधि प्राप्त हुई
है. तो सब मेराही पुण्य प्रताप हैं; ऐसी २ ऋद्धि तुजे
पहले केइ वक्त मिली, और तूं केइ वक्त मेरा सामना
किया. अनंत वक्त तेरी मैंने क्ष्वारी करी. तो भी तूं
नहीं शरमाय और सब बीती भूल, मेरा सामना कर
ता है. लिहाज कर २ शरमा आवतो जरा !!

चेतन्य—हांजी मेरी लाज को गमा, अनंत का
लसे मेरी फर्जीती करनेवाले आपको अब मैंने पेटाने,
तबही मुजे लिहाज पैदा हुई. तबही तुमारे सर्व परि-
वार का नाश कर तुमारे सामे अटन खडा हूं. तुम
भी मरनेका शोक हुवा हैं. जो तबका नाश देखतेही
मेरे सामे आये हो. तो संभालिये. इतना कहतेही च-
तन्यने मोइके नस्तकों क्षारिक नहक प्रहा

महिमा नाम्ना किया. उसी एक ७ मंडिकोमसे माना-
वर्णिय, दशनावर्णिय, और अन्तर्य इन तीनोंका स्व-
भांगिक नामो होमया. उसी एक आकाशसे सब देवता
आने जय २ कार किया. ओह द्रव्यकी जूही करी. देव
सुंदरी बनने लगी. चैतन्य महाराज की कैवल्य मान
कैवल्य दर्शन रूप महा कृपा की प्राप्ति हुई. और
तीनही लोकमें चैतन्यकी आज्ञा देवादे फिर गई. सब
लोकके वर्तनीय पुण्यानीय चैतन्य महाराजा हुई.

विवेक मंत्रीभर की सज्जसे, चैतन्य रायका स
ब काम सिद्ध हुआ जग, सब परिवारसे संयम महल
में परमानंद भोग लगे, एक दिन विवेकचन्द्रजी वाले
स्वामी आपके इष्टिराय सिद्धीसे में बड़ा खुश हुआ.
हैं. और आप सर्वसे सर्व दयाई दिये. इस लिये में आ-
पकी किसी प्रकार सज्जा देनेभी असमर्थ हैं, आप आ
नने ही होके आपके चार दाँ आसने मिले हुए हैं.

उनकाभी कुछ विचार ?

चैतन्य महाराजा वाले कुछ विचार नहीं. या
वेचारे नोचल होके पड़े हैं, और या जो कुछ करते हैं, सो
जग जग का भला है, वैसाही करते हैं. मुझे उनसे
कुछ दूरकर नही है. आयु, नाम, गोत्र, और माता
मुझे निरा, ये सब एक आयु, के आधार से निकले हैं.

और आयुष्य तो बेचारा स्वभाव से ही क्षिण २ में क्षय होता है, सर्वथा क्षय हुवा की, बाकी के तीनही उस के सात क्षय होजायेंगे; की फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके, अजर, अमर, अवीकार हो; अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता बनेंगे.

अपाय विचया नामे धर्म ध्यान के दूसरे पाये के ध्याता, अनंतकाल से आपय करने वाले, कर्मशत्रुओंका नाश करने का विचार, एकाग्रतासे तथा भृत-हो चिंतवनाकरें. और कर्मवृथी के कामोंसे निवृत्ती भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपायमें संलग्न बन, मोक्ष मार्ग में प्रवृत्तनें सामर्थ्य बने वो कोई कालमें सुखके भुक्ता जरूरही होंगें.

तृतीय पत्र-“विपाक विचय”

हा! हा: क्या आश्चर्य कारक इस जगतका व नाव द्रष्टि आता है. जीव जीव सब एकते हो, कोई सुखी तो कोई दुःखी, ऐतही, नीच, उंच, मूर्ख विद्वान, दालिद्री श्रीमंज, बगैरे विचित्र रचना दिखती है. इत्तका क्या कारण? जीव अपना आपही तो बुरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला, जीवके साथ दूसरा भी कोई है? दूसरा कौन है? (जरा विचार

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकायसे होय? उ.-शास्त्र और सूक्तया श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैसा) श्रवण करे, वधीरोंकी दया करे. यथा शक्त सहाय करे, दीनोकी अर्जमे गौर कर मिष्ट वचनसे संतोषे, गुणीयोके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नहीं करे तो श्रोतेंद्री (ज्ञान) निरोग्यता सुन्दरता तिन्नश्रुता पावे, तथा पाचेंद्री पणा पावें.

३ प्र.-चक्षु इन्द्रिकी हीनता कायसे होय? उ.-स्त्री पुरुषके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, लू रूपा देख दुर्गच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चि डावे, मनुष्य पशूकी आँखोको इजा करे या फोडे. कू-शास्त्र व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विषयमें आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे नेत्रकी कुचेष्टा करेगेसे अन्धा, काणा, चीवडा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे.

४ प्र.-चक्षु इन्द्रिकी प्रबलता कायसे पावे? उ.-साधू साध्वीयोके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानुराग धरे, वि. पय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टी फेरले, नेत्रके रोगीयोकी दया करे, सहायता करे, सत्सास्त्र व पुस्तक पलोंका पढ त करे, विषयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर, दीर्घ विषयी आँखो पावे.

द्री पणा पावे.

८ प्र-रस्त इन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे? उ-
अभक्ष त्यागे, रस्त ग्रधी नहो. सद्बोध कर धर्म फेलावे
सदा गुणोंकाही उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले
रस्तना होनकी सहायता करे, तो रस्तनाका निरोगी,
मगूर अलापो होवे.

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके
हस्त छेदन करे, खोटे तोले मापे वापरे, खोटे लेख
लिखे, कूशास्त्र बणावे. चोरी करे, लूले (हस्त रहित
की) हांसी करे, दूसरेका छेदन, भेदन, मारताड करे
पक्षियोंकी पांख काटे. तो लूला (हाथ रहित) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रचलता कायसे होय? उ-दान दे
वे, खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे,
अच्छे धर्मिवृत्तिके लेख लिखे, विनादी वस्तु ग्रहण
नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी व-
लिष्ट हाथ पावे.

११ प्र-पांखकी हीनता कायसे होय? उ-रस्ता
छोडके चले, हिंसादी पाप कर्मोंमें आने बडे, धर्म कार्य
में पीछा हट, कच्ची नदी, पाणी, हरी, कीडीयादीकों
पांखते दापे, चापे, अन्न छोटे बडे, जीवोंके पांख तोडे
लंगडे पांगले, की हंसी करे चोरी जारी आदी कृ दा

त्योमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवें.

१५ प्र-अपुत्र्या कायसे होवे ? उ-पशु, पक्षी, और मनुष्यादीके अनाथ बच्चोंको या यूका (ज्यूं) लीखों को मारे, अन्डे, फोडे, पुत्रवंतोपें द्वेष करे. गाय, भैंस, आदी बच्चोंको दूध पीते खेंच ले. बेंच दे. बिछोहा पडावे. बीजोंकी मीजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र रहित होवे.

१६ प्र-पुत्रवंत कायसे होवें ? उ-पशु, पक्षी, मनुष्यादी के अनाथ बच्चोंका रक्षण, पालण कर, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७ प्र-कुरुष कायसे होवे ? उ-अन्यके पुत्रोंको कूबुद्धी दे के माता पिता का अविनय करावें पितापुत्र का झगडा देख खुश होवे. फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा श्रृण और थापण डूवावे, तो उसके कपूत (अविनीत) पुत्र होवें.

१८ प्र-सूपुत्र कायसे होवें ? उ-आप माता पिता की भक्ती करें, अन्यको करनेका बौध करें. ॐ पुत्रोंको धर्म मार्गमें लगावें, सूपुत्र देख हर्षाये तो सूपुत्र्या होवें.

ॐ इन्द्राईको मूलमें फायाया है जो माता पिता की भक्ता करनेसे १४ हजार वर्षके आयुष्य वाढा देव होवें.

१९ प्र-कर्म आरज्या कायसे मिले? श्री भगवान् के आग्रहें कृत्य करते, उनके आगे देखें देवादि. श्रीकी भगवान्, विमचारीकी वनादि, सतीश्वरीकी निदा करे क-लेक चढ़ावे. अन्यकी अच्छी श्री देखें देवादि, तो कृष्ण मिले.

२० प्र-सुभारजा कायसे मिले? आप सीलवत रहे विमचारीके प्रसंगसे जन न भागे, विमचारीकी सुधार सतीश्वरीकी परमस्था और सहायता करे. श्री भगवान् का विरोध भिदाव तो अच्छी श्रीका संयोग मिले.

२१ प्र-अपमाना(मानहीन)कायसे होय? उ-अन्य का मान खंडन करे, माता पिता गुरु आदी धृष्टाका विनय न करे. गरीब, निवृद्धियोंका निरादर करे, दोषों आका अपमान सित छिद्र होय, अपने मुखसे अपनी परमस्था करे. अपने गुणका अहंकार करे, गुणवतोंका द्वेष करे, गुणवतोंको बदना न करे. दूसरोंको मना करे, खंडने चले, तो अपमाना होवे.

२२ प्र-सन्मान कायसे पावे? उ-विधुकर, सभ्य साधु, आचक, आधिक, सम्यकदर्शी, दाना, गुणी, धर्मार्थक, ईश्वरी महानोके गुणभासकर, गुणार्थीय व. चंद्रकाविचनय आकीकर, कीर्तीसिंहदेवादि, बदनाकरे. काल, गुणीजनही गुणोंको छिपावे, सदानुसार, गे.

सर्व स्थान सन्मान पावें.

२३ प्र-हेरी कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें झगडा करावे. हेरा देख हर्ष पावे तो, हेरी कुटम्ब मिले.

२४ प्र-अच्छ कुटम्ब कायसे मिले? कुटम्बमें सत्य करावे. निरद्रव्य कुटम्बकी सहायता करे. कुटम्बमें संप देख हर्षावे तो सुखदाइ कुटम्ब मिले.

२५ प्र-रोगीष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोंको संतापे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग बढाने अशाता उपजानेका उपाय करे, साधूवोके दख मलीन देख दुगंछा करे तो रोगीष्ट (रोगीला) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवें? उ-दीन दुःखी यों को रोगीष्ट देख दयालायें, सुख उपजायें. साधू साध्वी को, औषध दानदे, ते निरोगी होवे.

२७ प्र-रू स्वभावी कायसे होवे? उ-रू संगतसे खुश रहे, सत्यसंगतसे अलग रहें, दात २ में संततहो, तथा नर्क गलीसे आय हो तो. रू स्वभावी होवे.

२८ प्र-मिळावू कायसे होवे? उ-साधू के दर्शन से प्रसन्नहो, कृतंगत्यागे, दूधचन सुन धैर्य धरे, प्रात वस्तुपें संतोष धरे. तथा देवगतीसे आय हो. तो मू-स्वभावी (मिलपु) होवे.

२९ प्र-पापात्मा कायसे होवे? उ-लोकोको धर्म

से भृष्ट करे, सरसमीकी निम्न-करे, के धर्म की महीमा करे, अधर्मियोंकी संगत करनेसे पापान्ता होवे.

३० प्र-धर्मिणा कायसे होवे ? उ-अधर्मिणी को धर्मी बनावे, धर्मावली तन धनसे करनसे.

३१ प्र-निर्वल कायसे होवे ? उ-दैन, गरिबी को सताये, अथ वलकी अंतरायदे, निर्वलको दबावे, दगाड़ाकरे, पथ, बचनकरे, अपन वलका असीमान करे तो निर्वल होवे.

३२ प्र-वलजंल कायसे होवे ? उ-दैन, अनाथ जीवोंकी दया कर सता उपजावे, संकटमें सहાય करे, अथ बलाही प्रदान करे, तो वलजंल होवे.

३३ प्र-कायर कायसे होवे ? उ-अन्य जीवोंको मय उपजावे, धस्ला पावे, डूबाकरे, गाल, पंच, चोर, सखी, विष, अग्नी, पाणी, देव, मुन इन मयकर मस्ति-ओं के नामसे, दूसरे को मय मीनकर, पशुओं को दासदायक बनावे व चमकावे, उन्हे देखेदेपाने, तो कायर होवे.

३४ प्र-सुरीर कायसे होवे ? उ-दैन, दुःखी, अ-परधीको अभयदानदे, मयसे बचावे उपजव निदावे, तो सुरीर होवे.

३५ प्र-कृपा कायसे होवे ? उ-दैन द्रव्य - (धन-

होते) दान नदे, दूसरे को देता मना करे. देतेको देख दुःखीहोवे, दानकी निंदा करे अत्यन्तत्रय्यवता, सो कृपण होवे.

३६ प्र-दातार कायसे होवे? उ-गरीबी(दरिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन. दुःखीकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभीलापा रखे धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो, दातार होवे,

३७ प्र-मूर्ख कायसे होवे? उ-विद्वानो पंडितोकी हँसी, मत्करी, निंदा, अविनय, अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पुस्तकादी नाश करे, ज्ञानसे अरुची करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झूटे बनावे, और झूटेको सच्चे बनावे. तो मूर्ख होवे.

३८ प्र-पण्डित कायसे होवे? उ-विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन, तन, का व्यय, करे, विद्वानोकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोका मुफ्तमें प्रसार करे, सो पण्डित होवे.

३९ प्र-पराधीन कायसे होवे? उ-अन्यको बंदी-खानमें डाले, बहुत मेहनत करा थोड़ी मजूरी देवे. कर्जदारोका घर लुटे. इजत ले. कुटुम्ब को, नौकरो को, अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे,

प्राप्त होने भी योग्य नहीं सब

अंगोपमोपमो योग्यते देल आप दुःखी होय, या मन
हो अन्तर् योग योग्य, आधित्यको जसाय, अन्यको
जान पान सब योग्यकी अंतराय दे. आप और समर्थ
४३ प्र-यन विजय पयो नहीं सबे? उ-अन्यको

सो संख्य होय.

से नहीं देखे, ऊँचपाँकी नियन्त्र न करे, सोल पाले
अमीमान न करे, सुखपाँकी विधादिको विकार दूँही
४२ प्र-सुख कायसे पाले? उ-सुन्दर होके भी

सो ऊँचपाँकी होवे.

होती अमीमान करे, आल चडाय योग्य पड़त सजे,
अमीमान करे, दूसरे सुखपाँकी निदा करे, ऊँचपाँकी
४१ प्र-ऊँच कायसे होवे? उ-आप रूपवत हो

धीन स्वतंत्र होवे.

स्वतंत्र होके गुरुके छड़े, (हृकमसे) चले, सो सा-
आदिको वंदीखानसे छोडावे, स्वाधीन करे, अपणा
शक्ति उभाल काम नहीं कराय. मज्जित, पञ्च, पक्षी,
कारको संताप न दे; अहम्, वस्त्र, स्थानकी साक्षा दे,
४० प्र-स्वाधीन-कायसे होवे? उ-कुटिलकी, गो-

सो पराधीन होवे.

राधीन देखे खिड़ी होवे. दूसरेही स्वाधीनता नष्ट करे
पक्षी पक्षीको बालेमें, पिजरेमें, रोक रखे, दूसरेको प-

४४ प्र-सुख विलासी कायसे होय ? उ-आपको प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तु दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोये, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५ प्र-क्रोधी कायसे होय ? उ-आप क्रोध करे, क्रोधीयोंकी परसंस्या करे, मनुष्य, पशु, देवता ओंके जुधकी बातों सुन हर्षावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हाँसी करे सो क्रोधी होवे.

४६ प्र-धूर्त कायसे होय ? उ-धर्म करणीमें, दान, पुण्यमें जप, तप, में कण्ट करे थोड़ा कर बहुत बतावे पोमावे, सो दगावाज, धूर्त होवे.

४७ प्र-सरल कायसे होय ? उ-सरल भावसे करणी करे, करके पोनावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र-चोर कायसे होय ? उ-चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोरकी कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे.

४९ प्र-साहूकार कायसे होय ? उ-अदत्तवृत्त धारण करे, चोरका पत्थिय बर्जे, सो साहूकार होवे.

५० प्र-कसाइ कायसे होय ? उ-हिंसाकी परसंस्या करे, हिंसा करनेकी कला बतावें. हिंसा के शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंशक कपाइ होवें.

कपटसे, फलकी इच्छासे दान दें, दान दे अभीमान करें, सो अंतरद्विपमें मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य हों.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसे होवे ? उ-शुद्धाचारी साधूओं को हुलास भावसे शुद्ध आहार, स्नान, वस्त्र, पात्र, देवे, दूसरेके पाससे दिलावे. अन्य को देते देख खुशहों सो अकर्म भूनी मे समदृष्टी जुगलिया हों.

५८ प्र-अनार्य देशमें जन्म कीस कर्मसे लेवे ? उ-छोटा आलचडावें, म्लेच्छों की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वंश धारे, म्लेच्छ कामों की परसंस्या करें, आर्यदेश छोड़ अनार्यमें रहे, सो आनार्य देश में जन्मलें.

५९ प्र-आर्य देशमें कायसे जन्में ? उ-आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज कामें छोड़े, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनी (साधू) की परसंस्या करे, आर्यों को यथा शक्त सहायता करे, तो आर्य देशमें जन्मलेवे.

६० प्र-हस्माल कायसे होवे ? मनुष्य, पशु ओं पे गजा (शक्ती) उग्रांत वजन लादे वेगारमें पकड़े, ज्वरी से काम लेवें, थोडाकहे बहुत वजन भरें, ज्यादा उठाया देख हर्षावें, तो हस्माल, पोटीया, बेल, घोड़े

करी है।

६१ प्र-करी (माट चारण) कायसे होवे ?

उ-क्या का प्रीति, लोकाक (मिथ्य) शोखका वन विद्या, धर्म कथाका नाम रख निकार उत्पन्न होवे प्रीति कथाकर, विषय पापक कभीता रहे, विषय जनराम रामणी सुग, उनसे प्रेम करे, सो कृ. कभी माट चारण होवे.

६२ प्र-सूकरी कायसे होवे ? उ-जिनराम सुनी-

राजके गुण कीर्तन सुग होवेलावे, शोखकरी गणपति की आचारा की परसेया करे. प्रीतिप्रतिषेधन लगावे, धर्म कभीयो को सहज्यवे, धर्मकभीता की गुप्त

रहस्यो से हर्षावे सो, विद्वान कभी होवे.

६३ प्र-दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे ? उ-

मरने जीवोंको प्रत्य वे छोड़वे. उन्हे खान, पान, स्नान, नका सह्य वे, वंदीवान छुड़ावे, संसारसे उदासीनता परे, वृथा समय रखवे, दीन अनप्योंको सह्य वेवे, तो

दीर्घ आयुष्य वाला होवे.

६४ प्र-अलि आयुष्य कायसे पावे ? उ-जीव पान

करे, गर्व गलावे, आजीवका का भोग करे, अर्थ धन-लादी मारे, मुद लेने वाले साधुको अमुद आहार प्रमुख वेवे, अंगी विष शोखी से जीव मारे, सो अ-

ल्यआयुष पावें.

६५ प्र-सदा चिंता कायसे रहें? उ-बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवे, वैसी बात करें, अन्यको उदास देख खुशी होवे. सो सदा चिंता करने वाला होवें.

६६ प्र-निश्चित कायसे रहें? उ-दूसरे की चिंता का भंग करे, धर्मात्माकों देख खुश होवे, दुःख पीड़ितको संतोष उपजावे. सो सदा निश्चित रहें.

६७ प्र-दास कायसे होवें? उ-नोंकरोंको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें, परिवारका शैल्याका, अनी मान करे, सो बहुत जनोंका दास होवें.

६८ प्र-मालिक कायसे होवें? उ-धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी ब्यावृत्त करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्माकी सेवा भर्त्ता कराये, करते देख खुशी होंवे, सो बहुतोंका मालिक होवें.

६९ प्र-नपुंसक कायसे होवें? उ-नपुंसक के नृत्य गायन, ठठे देख खुशी होवे. पुरुषको स्त्रीका रूपवत्ता के नृत्य करावें, धूल, पांडे, आदी पद या नपुंसका लिंग छेदन करे, नपुंसक से विषय सेवन करे, आप नपुंसक जैसी चेष्टा करे, स्त्री पुरुषके संयोग्य निलाने की दलाली करें, पैद्री, तेंद्री, चौरिंद्रीकी हिंसा करे, सो नपुंसक होवें.

७० प्र-ही कायस होत? उ-हीचा किंवा अन्
त-द्वय होत, पुन्य हो हीका कय-वनात, हीचोकी
तह चला के या दगावो की, सी ही होत.

७१. य-निगिदम् कायसं जायते, उ-द्वेग, गुरु, धर्मका
निदा कराने, कंद भेलवा भयना कराने.

७२ ग-पुं-कृदन्तं कावसे द्वौयः उपपद्यते, पाली, अभा
, वनस्पती, कंद-मूल, वृक्ष, घास, फल, पत्र, फल

न, भवत, फल ना पुकरी हव.
७३ ग-विहारी कायस हवे? उ-निवेयपुव, गव-

७३ प्र-कलंसा (अंगोपांग सीहेत) कायस हेत
उ-जीवोक्त ह्याया, पांव, कान, नाक, अंगुली, पाई
अंगोपांगाका उदम अदन, को, कान करी, पीरे, क-
गुला को, भंडा करी देवे ह्योवि सो कलंसा (अंगो-
पांग सीहेत) होवे.

७५ प्र-पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करें, अपंगीकी करुणा करे, उसे सुधारने उपचार करे, आजीवीका चलावे. सहाय देवो तो पूर्णांगी (संपूर्ण अंगवाला) होवें.

७६ प्र-नीच जात कायसे पावे? उ-अपणी उंच जाति कुलका अभीमान करें, उंच की निंदा करें, नीचका द्वेष करें, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र-उंच जात कायसे पावे? उ-सत्पुरुषोंके गुण की परसंस्या करे, वंदना नमस्कार करे, अपणें दुर्गुण प्रगट करें, चार तीर्थकी भक्ती करें, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र-उंच चातीका दास क्यों बने? उ-उंच कर्म कर अभीमान करें, गुरुकी आज्ञाका भंग करें, उंच हो दीनोके शिर आल चडावे, उंच हो नीच काम करे, सो उंच हो नीच (दासके) कर्म करे.

७९ प्र-प्रदेश फिरके आजीका क्यों करें? उ-भि. क्षुकोंको लालच दे, बारंबार फिराय फिर दान दे, नोकरोंकी नोकरी ब्रसाय २ दी, धर्म नामसे निकला धन बहुत दिन घरमें रखे, काशीदको भटकावे, सो प्रदेश फिर अजीवीका करें.

का बध होता होय. वहां देखने बहुत जन खड़े रहें, मनमें आय की इसे कितनी वेग मारे अपन अपने घरजावें, उनके तथा बहुत मतांतरी यों एकत्र हो सत्य-देव गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानी कर्म बंधते हैं. वो पाणी मे डूब. आगमें जल, या मारी प्लेगा दी के सपाटे में आ एकदम बहुत मनुष्य मारे जाते हैं.

८५ प्र-एक दम बहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे ?
उ- धर्म भौत्सव. दिक्षा औत्सव. केवल औत्सव धर्म सभा बायखानादिकमें बहुत जन मिल हर्षावें. वैराग्य भाव लावें. उसकी परसंस्या करे. तो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावें.

८६ प्र-कोइ बिना काम द्वेष करे इसका क्या सवव ?
उ- परभव में किली को दुःख दिया होय, उस का नुकसान किया होय तो वो बिना दोष ही द्वेष धर ता हैं.

८७ प्र-बिना स्नेही स्नेह जगे तो क्या सवव ?
उ- दुःख छोड़ाया होय. साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या सग्राभमें, निराधार हुये को आधार देजेसे. वो पीछा अर्चित्य दुःख में आके सहाय करे. बिना कारण प्रेम करे.

८८ प्र-व्यंतरादी व्याथी से मुक्त न होये तो क्या

उ-त्तप संयम पाला हो शानीयोंकी बयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, बहुमान किया हो उन्हे जाति स्मरण, अवधीज्ञान, उपजे.

९३ प्र-वृत-पञ्चत्वाण क्यों नहीं कर सके? उ-अन्यके वृत भंग कराय. शुद्धवृत्तीके दोष लगाया, अन्यके वृत भंगा देख खुशी हो. पोते वृत ले प्रणामोंमें सकल्प विकल्प करे, बार २ वृत भांगे, उससे वृत पञ्चत्वाण न हो.

९४ प्र-कप्ताइयों के हाथसे कटे सो कोनसा पाप? उ-कपाइयों से वैपार करे. कपाइयों को जानवर दिया. कपाइके कृत्य करें, दगासैं घात करे, बनचरों की तिकार करें, मांस खाय, सो पशु हो. गृधाइयोंके हाथसे कटे.

९५ प्र-पाप कर धर्म माननेका क्या सबब? उ-भ्रष्टाचारीकी संगत करे. पाप कार्यमे धर्म कहे, सत्य देव, गुरु, धर्मकी निंदा करे, वो पापमेंही धर्म मानने.

९६ प्र-विभ चारी क्यों होवे ? उ-वैश्या के कीशव कमाय. या वैश्या का संग करे. कुसीलीये की परसंस्या करें तिर्यंच तिर्यंचणी का संयोग मिलावें, संयोग देख हर्षाय सो विभचारी होवें.

९७ प्र-सीलवंत काय से होवें ? उ-शीलपाले.

शीलव्रत की महिमा करें शीलव्रत की महायत्ना करें,
कुरीलीयों का संग छोड़ें, सो शीलवान् होंगे ०

१८ प्र-कटिब्रत कायसे होंगे? उ-सुखदुःख दोनों
१९ प्र-सांगानसे ही वस्त्र क्यों नहीं मिले? उ-
धनवान् हों, दान नद्वे आश्रितों को भजानसे,

१०० प्र-विभक्त्या ही कौन होंगे? उ-छिदी और निरङ्क,
१०१ जीयों क्यों मरे? उ-बहुत जीयों का
पति हो उन्हें मारन से,

१०२ प्र-अभिमत चित्त क्या रहे? उ-मदिरा भाग,
अकीमती की वस्तु सेवन करनेसे,

१०३ प्र-दृढाक्षर कायसे होंगे? मनुष्य पशुप
उपादा वान् लावनेसे,

१०४ प्र-शाल विद्या क्यों होंगे? उ-पतिकी
यत्न कर विमचार सेवनसे, पतिकी आपमान करनेसे,
१०५ प्र-सुख वांछा क्यों होंगे? उ-पशु पक्षी
के पक्षे, अन्ध मारनेसे, या लीला फोड़नेसे,

१०६ प्र-उपादा पुत्री क्यों होंगे? पाली पीत पशु
मर्कटों रोकके मारनेसे, वह पुत्रीयकी निन्दा करनेसे,

१०७ प्र-विद्या पुत्री क्यों होंगे? उ-धर्म का धन
जग ले, धर्म के उप करण चोरान ले,

- १०८ प्र-मैंद कायसे होवें? उ-मदिरा मांसके भोगवनेसे. मैंद वालेकी हँसी करनेसे.
- १०९ प्र-अपचाका रोग कायसे होवे? उ-साधू को खराब अहार देनेसे.
- ११० प्र-क्षयनरोग कायसे होवे? हड्डीका वैपर करे, सेहत (मय) झाड़े तो.
- १११ प्र-कूलूप बेडोल मुख कायसे होवे? उ-दानेश्वरीकी निंदा करनेसे. मुखका बहुत शृंगार करनेसे.
- ११२ प्र-छोड कायसे रहे? उ-गर्भपात करनेसे.
- ११३ प्र-स्थानभ्रष्ट कायसे होवे? रस्ते परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आत्तारा छोडानेसे.
- ११४ प्र-श्वेत कुट्ट कायसे होवे? गौवध, कन्या काय, करनेसे तथा साधू हो वृत भंग करनेसे.
- ११५ प्र-पुत्र वियोग कायसे होवे? उ-गाय, भैंस वधेको दूध न पानेसे. पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे.
- ११६ प्र-वचपणमें मात पिता क्यों मरे? तराकी घात करनेसे. मात पितका अपमान करनेसे.
- ११७ प्र-जलौंद्र कायसे होवे? अनक्ष भक्षणसे.
- ११८ प्र-दांत कायसे दुखे? अत्यंत रस्नाकी छेदनेसे. अभक्ष भक्षणसे.
- ११९ प्र-लम्बे दांत क्यों होवें? उ-घरो-

करनेसे बड़ाही बगली करनेसे.

१२० प्र-मुज कवळ फजरी कायसे होवे ? उ-र.
पीयाँ या परबुधियाँ से गमन करनेसे.

१२१ प्र-गुगा कायसे होवे ? उ-बूटी साक्षी से
शुद्ध को गाली देनेसे,

१२२ प्र-सुखरोग कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी को
घोषों से मारनेसे सूँठ काटे और चवानेसे.

१२३ प्र-उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे ? उ-
माता, पिता, गुरु को मारे या अपमान करनेसे.

१२४ प्र-गुंघरू मस्से जगावा क्यों होवे ? उ-पशु
पक्षी को पत्थर से मारनेसे

१२५ प्र-बमडी फटे लया दाव क्यों होवे ? उ-
साँप, बिच्छू, गो खटमल ज्यूं जीव को मारे तो.

१२६ प्र-सदा बीमार क्यों रहे ? उ-धमाला का
छाक धूस न करनेसे.

१२७ प्र-पीनस रोग क्यों होवे ? उ-बीबीयाँ,
मयूर, तोते आदी पक्षी मारनेसे.

१२८ प्र-कुट रोग कायसे होय ? साधुको संगाय
देनेसे.

१२९ प्र-सरीर कायसे धुंज ? उ-रस्ते चलेते, दुष्ट
प्रेम, तीक्ष्ण.

१३० प्र-अधांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयाँकी हित्यासे
१३१ प्र-नासूर कायसे होवे? पशु पक्षी मनुष्य की
नाकसे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलिज कुटी कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी
मनुष्य की फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरत (मस्ता) कायसे होवे? उ-नदी तलाव
का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे ? उ-त्री सध्या
(फजर दोप्रहर शाम) को भोजन कारनेसे.

१३५ प्र-रांधन वायू कायसे होवे ? उ-घोडे. ऊट.
धेल वकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ-अन्डेका रस पीनेसे.

१३७ प्र-उल्लू (घुघु) कायसे होवे ? उ-रात्री भो-
जन करनेसे. तथा विन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध. हेशमें
संतत हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र- गव्वा कुत्रा कायसे होवे? उ-अभीमान
करके वशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-चिल्ली कायसे होवे? उ-दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२ प्र-वाला (नारु) कायसे निकले ? विना छा-

करनेसे चढ़ाही खूली करनेसे.

१२० प्र-मुत्र कबल फाटी कायसे होवे ? उ-र.
णीयाँ या परखीयाँ से गमन करनेसे.

१२१ प्र-गुंगा कायसे होवे ? उ-झूटी साखी से
शुद्ध को गाली देनेसे,

१२२ प्र-सेखरोग कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी को
बाणी से मारनेसे सूँठ काट आर चवानेसे.

१२३ प्र-उत्तम जाती का भीख क्यों मांगे ? उ-
माता, पिता, गुरु को मारे या अपमान करनेसे.

१२४ प्र-गुण्डे भस्मे ज्यादा क्यों होवे ? उ-पशु
पक्षी को पथर से मारनेसे

१२५ प्र-चमड़ा फटे तथा दाव क्यों होवे ? उ-
साँप, बिच्छू, गो खटमल जूँ कीचड़ को मारे तो.

१२६ प्र-सदा बीमार क्यों रहे ? उ-धर्मादा का
खाक धूस न करेता.

१२७ प्र-पीनस रोग क्यों होवे ? उ-बीडिया,
मयूर, ताँत आदी पक्षी मारनेसे.

१२८ प्र-कुष्ठ रोग कायसे होय ? साधुको सताय
देनेसे.

१२९ प्र-सरीर कायसे धूँजे ? उ-रस्ते चलेते, पक्ष
प्रण, शोडिता.

१३० प्र-अधांगरोग क्यों होवे? स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसे होवे? पशु पक्षी मनुष्य की नाकमें नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलिज कुष्टी कायसे होवे ? उ-पशु पक्षी मनुष्य कों फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरत्त (मस्ता) कायसे होवे? उ-नदी तलाव का पाणी सोशनेसे. और जलचर जीव मारनेसे.

१३४ प्र-रातअन्ध कायसे होवे ? उ-त्री सध्या (फजर दोघ्रहर शाम) को भोजन करनेसे.

१३५ प्र-रांधन वायू कायसे होवे ? उ-घोडे. ऊट. धेल बकरे गाडे आदी भाडे देनेसे.

१३६ भगंदर कायसे होवे? उ-अन्डेका रत्त पीनेसे.

१३७ प्र-उल्लू (घुघु) कायसे होवे ? उ-रात्री भोजन करनेसे. तथा विन देखी वस्तु खानेसे.

१३८ प्र-सिंह सर्प कायसे होवे? उ-क्रोध. हेशमें संतप्त हो आत्मघात करनेसे.

१३९ प्र- गव्वा कुत्रा कायसे होवे? उ-अभीमान करके बशहो अकार्य कर मरनेसे.

१४० प्र-बिल्ली कायसे होवे? उ-दगा करनेसे.

१४१ प्र-नवल सर्प कायसे होवे? लोभ करनेसे.

१४२ प्र-बाला (नालु) कायसे निकले? विना छा-

गा पाणी पीये, जीवाणीका जल न करे।

१४३ प्र-मन्य कायसे होवे? क्षमा द्या, नमस्से

१४४ प्र-सी मरके पुण्य कायसे होवे? उ-सख,

शील, संतोष विनय आदी गुण धारन करनेसे.

१४५ प्र-देवता कौन होवे? उ-साधु, श्रावक,

लापस और अकाम (मन विन) निर्मम करनेसे.

१४६ प्र-उरसी स्थिर कायसे रहे? उ-दान देके

पक्षताप नहीं करे तो.

१४७ प्र-काणा कायसे होवे? उ-बीज, फल, फुल

छेद, हार गजरे वगैरे बनानेसे.

१४८ प्र-गलित कृष्टि कायसे होवे? सुषण चांदी

जोहा तांबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र-यश करते अपयश क्यों होवे? उ-सर्वत्र

अप्यर्पी करनेसे. अन्यकृत उपकार न माननेसे.

१५० अखिलें धामणी कायसे होवे? निमक(जिण

के आगर खोदनेसे.

१५१ प्र-कांख संजरी कायसे होवे? सम्यक द्रष्टा

हो मिथ्याही का अनायास काम करनेसे.

१५२ छिंड छिंड मीर कायसे होवे? उ-न्यायाधिपति

हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र-कंठमात्र कायसे होवे? उ-मरहीका

अहार करनेसे.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो क्या कारण? उ-लांच ले झूटा न्याय करनेसे.

१५५ प्र-संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ-कृत्यनता, मित्र द्रोहो और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र-डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे सो. तथा अन्यको डरावे सो.

१५७ प्र-खुजली कायसे चले? उ-तेंद्री ज्यू लीख खटमल पिस्तू उदाइ दी मारनेसे.

१५८ प्र-ज्यूवो ज्यादा क्यों पडे? उ-मच्छ अहारी करनेसे. ज्यूवा अग्नी आदीमें डाल मारे तो.

१५९ प्र-तपस्या क्यों नहीं बने? उ-तप जपका अभीमान करे तो. तप करते अंलाय देवे तो.

१६० प्र-अनुहा मणी भापा क्यों लगे? उ-वाक्य चातुरीका अभीमान करे तो. कठोर वचन बोले तो.

१६१ प्र-अपयशी क्यों होवे? उ-सासू, नणंद, देराणी, जेठाणी, भाइ भो जाइ का ईर्षा करे तो.

१६२ प्र-तरुणपणे स्त्री क्यों मरे? उ-भोगकी तिव्र अभीलापा रखे. अमर्याद विषय सेवे तो.

१६४ प्र-छमुछिम मनुष्य कौन होवे? उ-नील, गुलीके कुंड करे छमुछिमकी घात करे सो.

१६५ प्र-युक्त उपादा कदा ज्ञा ? उ-यत्तिके कदा

करोति, समक आधिक्यको भूय भवति

१६६ प्र-यत्नी शब्दा कदा आ ? उ-शब्दादी यम

वा यम, यत्नी, आने यत्ने का भवति

१६७ प्र-युक्तन यामादा ११ आ ? उ-याम के

कदा करोति, यामादे को यामादा

१६८ प्र-युक्तन युक्त कदा ? उ-यामादा

१६९ प्र-युक्तन कदा कदा ? उ-यामादा

यु, युक्तन युक्त कदा, यम यम युक्तन कदा

१७० प्र-युक्तन कदा कदा ? उ-यामादा

करोति, यामादे को यामादा

१७१ प्र-युक्तन अयम् कदा कदा ? उ-यामादा

यामादा कदा कदा ? यामादे यामादा

यामादे, यामादे यामादे

१७२ प्र-यामादा (यामादा) कदा कदा ?

यामादा यामादा यामादे

१७३ प्र-यामादा कदा कदा ? उ-यामादा

यामादे यामादे यामादे यामादे

१७४ प्र-यामादा कदा कदा ? उ-

यामादे यामादे यामादे यामादे

१७५ प्र-यामादा कदा कदा ? यामादे

वैपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे.
१७६ प्र-१२ वर्ष का छोड़ कायसे रहे? उ-पेशा
व भेला कर सर्व रात्री रखनेसे.

१७७ प्र-२४ वर्षका छोड़ कायसे रहे? उ-तिव्र
भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७८ प्र-सदा सरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन
करनेसे. वहीत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७९ प्र-वंशा स्त्री कायसे होवे? उ-फूलका अत्त
र निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्चे मारनेसे.

१८० प्र-मृतवांशा कायसे होवे? उ-उगती विनास्
ते, कूपल चूटनेसे.

१८१ प्र-बहुत स्त्री होके भी पुत्र क्यों न होवे?
-बहुत विनास्पतीका रत्न निकालनेसे.

१८२ प्र-हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचरजीव
त मारनेसे. कत्तार्इके कर्म करनेसे.

१८३ प्र-सशक्त धर्म क्यों नहीं वने? उ-ममइ
व्यका रक्त) बहुत निकाला होवेतो.

१८४ प्र-सरीर भारी कायसे होवे? उ-आत्मा
दारु बहुत पिया होयतो.

१८५ प्र-साधुके तिर आल देने, शुद्ध आहार लेने
पशु को अशुद्ध देवे. तो गर्भमें आड़ा रहे.

१८२ प्र-नक्तं निवृत्तं गतिम् अकाम निवृत्तं कर
 मनुष्य, दृष्ट्वा वा पृथक् दृष्ट्वा वा पृथक् सुख पश्ये, क.
 दीन के निर कलक आवे, शक सजा पश्ये, निर इ
 म्माक दानेसं निवृत्तं ठहरे छट आवे.
 १८३ प्र-मोक्ष कायसे मिले, ३-दान दान
 पारिष, और सपकी सम्पक, प्रकार आगपन पालन
 स्फूर्ति करीये, इति

इत्युक्ती कर्म पद्य कान्तं, और मुक्तिकं, अं.
 क कात्वा दानि पश्ये वनाय है, किलोक कर्म, इम
 भक्त किं दमरी यमं योगन है और किलोक
 अग्रे क ज्ञानमं योगन है, अन्त आनी मन्त्र मग
 वनं समीचीनी जीविका कर्म विप्राकसे दानी है विज्ञा
 की अत्यन्त करी, पश्ये वानी दान सम्पदा वान
 कर सक्त मर्ते, यदा कि सम्पदा विद्य अन्त जीव
 कर मग है, और पश्ये जीवक, अन्त कर्म सम्पदा
 पश्ये लो है, और पश्ये सम्पदाक सम्पदा पश्ये
 अन्त दानका दानी है, यदा अन्त सम्पदा विप्राक
 अन्त दानका दानी है, यदा अन्त सम्पदा विप्राक

पि धर्म ध्यानी, ज्ञानी की अज्ञानुसार, विषाक विषय का यथा शक्त विचार करते हुये कर्मों की विचित्रता से बाकेफ होते हैं; वो कर्म बन्ध के कारण से बचके, कर्मक्षय करनेके मार्गमें प्रवृत्तन हो, अनंत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करते हैं.

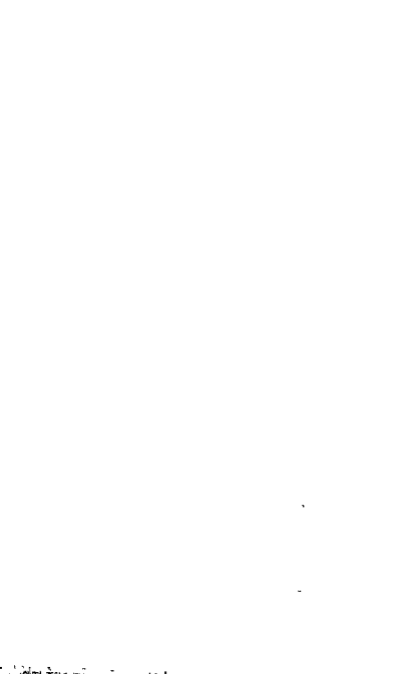
चतुर्थ पत्र "संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का हैं. सो जगत का, तथा जगत में रहे हुये पदार्थोंका, आकार का विचार करे. सो संस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत अकाश (पोलार) रूप अनंत क्षेत्र हैं. की जिसका अंतः पारही नहीं. उसे अलोक कहते हैं, इस अलोक के मध्य भाग में, ३४३ राजू घनाकार लम्बी चौड़ी जितनी जगा में, जीवाजीव व रुपी अरुपी पदार्थ रूप एक पिंड हैं, उसे 'लोक' कहते हैं, यह लोक नीचे सातमी नर्क के तले ७ राजू का चौड़ा हैं, और उपर सात राजू आवें वहां मूल से घटता २, मध्य लोक के स्थान एक राजू का चौड़ा हैं, और वहां से उपर चढते चौड़ास में बढते २, चार राजू (पांचमें देवलोक तक) आवे, वहां ५ राजू का चौड़ा है, और चौड़ास में घटते २ तीन

१८०० जोजन उंची जगा है. उत्ते मध्य (तिरछा) लोक कहते हैं. वहां मध्यमें तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौड़ा उपर. एक हजार जोजन चौड़ा (मलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता (चूड़ी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौड़ा (गोल) 'जंबुद्विप' हैं, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूड़ी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौड़ा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही त. र्फ वैसाही फिरता चार लक्ष जोजन चौड़ा 'धातकी खंडद्विप' हैं. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौड़ा 'कालोदयी समुद्र' है' उसके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौड़ा 'पुष्कराद्वीप' हैं. यों एकैकको चौगिरदा फिरते और चौड़ासमें एकैकसे दुगणे, अतंख्यात द्विप, और अतंख्यात समुद्र, सब चूड़ी (बंगड़ी) के संस्थानमें हैं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी है, वहांसे ७२० योजन उपर तारा मंडल, वहां से १० जोज उपर • सूर्य का

• पुष्कर द्विपके नाव भागमें मंत्राचार (बुद्धा) नाव क्षेत्र पर्वत है. उसके ऊपरही ननुष्य का वस्ती है जंबुद्विप घ. त. की खंड द्विप और बाधा पुष्करार्थ द्विप से भद्रा द्विप कहते हैं.

• चन्द्रनों का विमान सनान्य पंच १८०० कोस चौड़ा है सूर्य का १६०० कोस चौड़ा. और ग्रह. श्वेत. तारा के विमान उचन्य १२० कोस उचन्य ५०० कोस चौड़े हैं. और १६ ग्रह कोस सूर्य



[illegible]

-14-2

[illegible]

3. *Chloris*

'የጥቅም ድርሰት' የዓለማ-አካል
በነፃ ለሕጻናት ማስተላለፍ እንዲችሉ



..ଲକ୍ଷ୍ମୀ ସ୍ୱର୍ଗାଧିପତି..-..ଲକ୍ଷ୍ମୀ ସ୍ୱର୍ଗାଧିପତି

त हर्षाय, और वियोग होने से पीछी वैसीही ठा जगे उत्ती का नाम रुची है. संतारी जीवोंकी सी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोंकी होती हैं, ध्यानी की वैसी रुची आत्म साधन के कामों में होती है. यह आत्म साधन के परमार्थिक कामों के ल्या चार भेद किये है.

प्रथम पत्र-अज्ञा रुची

१ आज्ञा रुची; अनादी काल से यह जीव जिनाज्ञा का उलंघन कर, स्वच्छंदा चारी हो रहे है. जिससेही इत्ने दिन संतार में परिभ्रमण किया. उत्तराध्येयन तृत्वमे फरमाया हैं की "छंदो निरोहेण उववेइ मोरकं" अर्थात् अपना छंदा (इच्छा) का निरुधन करे जिनाज्ञा में प्रवृत्तनसे ही मोक्ष मिलती है. इसलिये मुमुक्षु जन को चाहिये की अपनी इच्छा को रोक. वितराग की आज्ञा में प्रवृत्तने का पर्यन्त करे, अब वितराग की आज्ञा क्या है. उसे विचारिये. वितराग=राग द्वेषके क्षय करने वाले को कहते हैं, जिनोनें राग द्वेषके क्षयमें ही आपदा देखा, वो राग द्वेष घटानेकी ही आज्ञा करेंगे

1944-1945

[The page contains several paragraphs of handwritten text in Hindi script, which is extremely faint and mostly illegible due to poor scan quality.]

ॐ गाथा ॥ सोच्चा जाणइ कल्लाणं. सोच्चा जाणइ. पावणं,
उभयंपि जाणाइ सोच्चा. जेतयं तं समायेरे. ११

अर्थ-सुनने सेही मालम होती है के. अमुक सुकृत्य करने से अपनी आत्मा का कल्याण (अच्छा-भला) होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसे बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनों ऐसा मिश्र काम होगा जैसे की काम भोग में सुख तो थोड़ा है, और दुःख अनंत है, यह दोनों बात समजे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रन्थ धर्म हैं. जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा 'चरीत्ता चरित्ते' कहे हैं. वर्यो-कि संसार में बैठे हैं सो विना पाप गुजरान होना मुशकिल ऐसा सनज, उदासीन वृत्ति से पश्चात्ताप युक्त काम पूरता कर्म करते हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म को जाण. जब २ मौका मिलता है- तब २ अत्यंत हर्ष युक्त धर्म किया करते हैं. यह तीनही बातों सुनने से मालम पडती है. उसने से अच्छी लगे उसे स्विकार के सुखी होते हैं. वे सब उपदेश सेही जाणा जाता है. उपदेश (विज्ञान) में सदा अनीनव तरह २ का सट्टीय श्रम करने से नवनाविक तत्व की तत्वज्ञता उत्पन्न होती है. च्यानस्त हुये जो हृदय में रम्य करता है. अब अन्य सर्व सुखी है.

दार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले और ३ धुवेवा= ध्रुव (स्थिर) रहने वाले पदार्थ, वह तीन पद पडाते जिसमें चउदह पुर्वका ज्ञान समझ जातेथे. जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसें सब हौदमें फैल जाती हैं; तैसेही उन्हे सिखाया हुवा, साक्षित शब्द विस्तार कर प्रगम जाताथा. और चउदे पुर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय, ऐसा द्रष्टी वाद अंगके पाठी (पडे हुये) भी विराजमान थे. इस ज्ञानके प्रमोक्तृष्ट रत्नमें जब उनकी अंबात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जितना समय ध्यान में वितिक्रंत होते भी उनको भूख, प्यास, शीत, उष्णादी पीडा (दुःख) नक न मालम होतीथी. ऐसे २ प्रबल बुद्धि वाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे! चौथा आरा उतरे लगभग १७६ वर्ष गये पीछे. 'श्री देवद्वी गणी क्षमा श्रमण' नामें आचार्य, किसी व्याधीकों निवारने सूठ लायेथे. और आहार किये वाद भोगवणेकों कानमें रखलीथी. सो वक्तस्तिर खाना भूल गये. और देवती प्रतिक्रमण की आज्ञा लेती वक्त नमस्कार करते वो सूंठ कानमेंसे गिर पड़ी, उसे देख विचार हुवा की अब्बी एक पुर्व जितना ज्ञान होतेभी इत्नी बुद्धि मंद रह गई है. तो आगे क्या होगा. जो

श्री उत्तराध्यायन जीके दशमें अध्ययनमें कहा है:-

गाथा
३३००००००

नहू जिणे अज्ज दिस्मइ, बहू मए दिस्सइ मग्गदे
सिए, संपइ नेया.उए पहे.समय गोथमे मा पमा-
यए ३१-

अर्थात् अन्वी इस पंचम कालमें, नहीं देखते हैं निश्चयसे श्री जिन, तिर्थकर भगवान् व केवल ज्ञानी परन्तु बहुत हैं. मोक्ष मार्ग के उपदेशमें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोंको मुक्ति पन्थ में चलाने वाले, 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करनेमें, हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आलस मत कर! इतन गाथानुसार अर्थात् तो भव्य मोक्षार्थी जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र, और सद्बोधके सद्गुरुओंकाही आधार रहा है, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धी करने वाला ज्ञान है. वो इस वक्त सूत्र व ग्रन्थोंमें हैं, और उसकी रहस्य गीतायों वहु सूत्रीयों उत्पात बुद्धी और दीर्घ द्रष्टी वालोंके पास है. की जिनोंने अपने गुरुओंके पाससे यथा विधी धारण की है, और वो न्याय मार्गमें लोकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवृत्तियोंसे प्रवृत्त रहे, शान्त, दान्त, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं. उनके पास शास्त्राभ्यास करना, क्योंकि शास्त्र समुद्र अति गहन गुडार्थों करके भरा है; उसकी यथार्थ

समज होना है. सीढ़ी आस कदवाण करने वाली है.
इस एक किलेक ले भयुआं. अभीमान के
भाते तुं राम तिन, पुस्तकी तिया पर २ पांडितरान
पन चोठे हैं, उन्हेन चहुँसे स्थान अर्थका अनर्थ कर
शोखका शयन बना दिया है; अंतव भव समण भिन्न
ने बाळा पवित्र आदिशा मय परम धर्म को हिंसासय
कर अंतव भयका वतने बाळा बना दिया है; इस लि
पुढी धनाना पडना है की मोक्षार्थिका अजल. जान
बाना तुक गुरुंकी पदिसा शोखसुख कर, उनके
पासने जान भड्ढा करना चाहीय.
और सुगणधनानी सुनक ११ में अत्यपनस
पुनर्विदेहाक उद्देश्य इस गमाल करमाय है:—
“गण” आस गुने सया देवे, तिस सोए भणसि. २४
अथानि मन, भवन, काया, रूप, आत्मको पाप
मार्गसि जाना हूँ गक, अपने वतने करी है सुमार्गसि
आत्मको नही जान देवे, सदा धन हूँ, और
मनको, तिय स निवार धन वान में उगा रज्ज
है. सगणकी जो आत्म पवित्र रूप गना है, उसे
कर दिया है. तियाज, अज्ञ, गमाह, कया, और
अज्ञान गान, इन सब गमाली करके गने हूँ.

और अहिंसा सत्य दत्त, ब्रम्हचार्य अममत्व यह पंच महावृत धारन किये, इन्हे गुणके धारक होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वितराग प्रणित धर्म फरमा सके है, वो कैसा धर्म फरमायेंगे, तो की प्रतिपूर्ण न्युन्याधिकता रहित. देशवृत्ती (श्रावकका) या सर्ववृत्ति (साधूका) निरुपम औपमा रहित वैसा धर्म अन्य कोई भी प्रकाश नहीं शक्ते है, ऐसे गुणज्ञोंके पाससे ज्ञान संपादन करना.

अन्न, धन, आदी सामान्य वस्तुभी दातारके पाससे ग्रहण करते अनेक लघुता करते है. तथा सरोवरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं हो सक्ता है. तो ज्ञान जैसा अत्युत्तम पदार्थ विना लघुता नम्रता किये कहाँसे प्राप्त होगा. इस लिये, ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहले अध्यायमें यह रीती फरमाइ है:—

ॐ गाथा ५ आसण गउ न पुच्छेज्जा, नेव सिज्जा गउ कया इवि
५३३३३३३३३३ आगमुकुडु उ संतो, पुच्छेज्जा पंजालि उडो २२
एवं विणय जुत्तरस्स सुत्तं अत्यंच तदुभयं
पुच्छ माणस्स सीतस्स वागरेज्जं जहा सुये २३

अर्थात्—अपने आसण (विछोन) पे बेटा हुआ तथा सेजामें सूता हुआ कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे.

क्यों कि आसण यह अभीमान जनक है, और-अभि-
मान मानका शत्रु है. और सेना हुआ सोन ग्रहण कर
नैसे. अविनय और प्रमाद होता है. यह सोनके नाश
करनेवाले है, इस लिये जब प्रश्न पुछनेकी या-सोन
ग्रहण करनेकी इच्छा होय, तब, आसन अविनय मान
और प्रमादको छोड़के जहाँ गुरु महाराज विराजे-होय
उनके समुख नम्रता युक्त आये, और दोनों पुढे
जमीकी लगा, दोनों होय-जोह मस्तकसे चूहा, सोन
बक (उठ बैठ) नमस्कार-करे, और दोनों-पुढे न-
मनकी लगाय, दोनों होय-जोह, नमा हुआ-समुख
रहके, उच्च वहिमान बचनोस प्रशंस करे, सब अपा-
धिक दिख-चापसी पुछे. और क्या उत्तर मिलता है.
ऐसी उत्कृष्टा युक्त प्रकाश उनके समुख प्रदीपत,
वो फरमावे सो, जो महेश, बचनसे ग्रहण करे, जितना
अपनकी पाद रहे, उन्नाही ग्रहण करे. ज्यादा लाभ
नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पुछनेसे, गुरु महारा
जने अपने गुरुके पास से देखा सोन धारन किया.
बुझाही उसे देखा (पढावे).-

जो सद्गुरुके पाससे सोन ग्रहण किया है, उम-
रही पुनर्जन्मी करते (फरते) किसी तरह की शंका उ-
त्पन्न नहीं, या कोई शङ्क निम्नोप ही गया (भू-३

गये) हो. तथा किर्तने प्रश्न पूछा. उसका उत्तर नहीं आया हो. तब पूर्वोक्त विधीसे गुरु महाराजके सम्मुख आके—

द्वितीयपत्र—“पुच्छणा”

२ पूछणा अर्थात् पूछा करें. काहें कृपाल आपने अनुग्रह कर. मुझे अनुक पड़ाया था. उसमें इस प्रकार संशय उत्पन्न होता है. तो है पुण्य, उसका निराकरण निवारण करने आपको तकलिफ देतां हु तो नाक किर्तये. और मुझे मार्ग बताइये, इत्यादी नम्रता युक्त, अपने मन की शंका मुझी २ गुरुजी के सम्मुख प्रकाश करें, और गुरु महाराज उत्तर देंगे, वो आप एकाम्रता से उल्लुक्ता से. जी । तहेत इत्यादी लकोमल-मीठे वचनो से बचाता हुवा ग्रहण करें. जहां तक अपने चितका पूरा समाधान न होवे, वहां तक तर्क उठा २ के पूछताही जाय, शरमाय नहीं; डरे नहीं, धमकाय नहीं निश्चल चित से पूरा निराकरण करवले. देह रहित होवे, की कोई भी उस बात को पूछे ते आप उसके हृदय लचोट टसा लके, ऐसा निश्चय करें

* चोखना मने चपलने इन्होने कही बहुत मुठे हुने है और संताने उक्त मुक्तका करते हैं.

[illegible][illegible]

2. 151113 474114

Habitat - In fields & low woods.

— 216 —

[illegible]

„Mozart...-ka kraljica“

42E 2 1b

अथ वा अस्यास कः निश्चय करे निश्चिते वा न किञ्चि

ऐसी 'गडबड' भी नहीं करें. ज्ञान फेरती वक्त 'अणु पेहा' अर्थात् उपयोग रखते. जो जो अक्षरोंका मुख से उच्चार होवें. उसका अर्थ अपने मनमें, विचारता जाय उससे, दृष्टी फेलाता जाय, इसमें बहुत गुण हैं.



“अणुपेहाणं, आउयवजाउ सत्र कम्म पगडीउ धणीय वंधाउ, तिडिल वंधण व. द्वा उपकरेइ, दिह काल ठिइयाउ, रहस्त उ काल ठिइयाउपकरेइ; बहु पएस गाउ, अप्प पएस गाउपकरेइ, आउयं चणं कम्मं, तियबंधइ, तियनोबंधइ अतायावेयणि जंचणं कम्मं, नो भुज्जो २ उवचिणाइ; अणाइयंचणं, अणवगदगं, दीह, मद्धं, चउरंत संसार कंतारं, त्विप्पा मेव वीइ वयइ” ३२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्—उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्द क अर्थ परमार्थ दीर्घ दृष्टीसे विचारनेसे जीव आठ कर्म मेंसे आयुष्य कर्म छोड़ बाकीके ७ कर्मकी प्रकृति यों जो पहलें निबड (मजबूत) बांधी होय, उसे स्थिर (ढीली) करे, (जलदी छूट जाय ऐसी) बहुत काल तक भोगवणा पड़े, ऐसा बंध बांधा होय तो; थोड़ेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे. तत्र भाव (वीकृत रत्तसे उदय आने) की हों, उसे मंद भाव (तरलपणे)

उसे अक्षेयनी कथा कहनी. इसके ४ भेद [१] प्रथम साधूका धर्म ५ महावृत, ५ सुमती, ३ गुती, (यह १ चारित्र) आदी कहे, जो साधू होने समर्थ न हों उनके लिये श्रावकके १२ वृत आदी कहे, के यथा शक्त धारण करनेकी सूचना करे. [२] निश्चय में, और व्यवहारमें, प्रवृत्तनेकी रीती सद्वाद शैलीसे कहे, की निश्चय में मोक्ष ज्ञानादी त्रय रत्नकी आराधनासे और व्यवहार में रजुहरण मुहपति आदी साधूके चिन्ह व शुद्ध क्रियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धी होनी मुशकिल है, व्यवहारमें शुद्ध प्रवृत्ती का, निश्चय सिद्धीकी क्षप करनेसे सर्व सिद्धी होती है. [३] श्रौताओंको शंशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके, आपही उसका समाधान करें की जिन्से इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर नर्भिक शब्दमें दे समाधान करें [४] सत्य सरल सबको रुचें ऐसा सद्बोध करे. परन्तु

* १ वृत ज्ञानका हिस्सा नहीं हैं, स्थावरको नयाँद करे. २ बड़ा झूठ नहीं बोलें. ३ बड़ा चोरी न करे. ४ परश्रोका त्याग करे. परिग्रह को नयाँद करे. ५ दिसाको नयाँद करे. ६ उपनोग परिभोगको नयाँद करे. ७ अनर्थों दंड त्यागे, ८ स्नानाधिक करे, ९ दिसावधारी करे, नैन चिऊरे, १० योग करे, ११ मुन्यायज को १२ नकारका सुजता दान उच्छेद नाचसे दये.

प्रत्यक्षतया देव वदं, या आत्म भूतया, परमेश्वर देव
 देवा उपदेशे वही कर्त. "एतकी निरा कं परं
 पदो वही."

२ "विशेषण" अर्थात् विशेषण, मयस या अ-

थासे चिन्तन प्रणाली कर्त. पुनः मर्त्य का आत्मा
 स्थिर करे, या विशेषण धर्म-कथा, इसके ४ अर्थ[१]

अन्य मन के परिचय में, तथा मन्थनार्थक मन में, कि-

सी की श्रमा अथ ईद होय न, उम मन मन का ग-

हन सुख मन मन के, अन्य मन की शान्ति में मि-

ला के, प्रत्यक्ष करके मनः कि निम्नोक्त अर्थन नून

ठिकी आशय, एसा होय कर्त. [२] एकात्म अन्य-

मन ही, किरी का मन जगा होय न, उम उमा के

मन के शान्ति में जो मन्थन आ की कठिना क्रिया, न-

या मन में मिलनी शान्ति, होय, या मन के उ-

मन पूरे की ऐव चरने वाले मन है, या अन्य या

मयस दृष्टिसे मन के मन का दृष्ट आशय कर्त. [३]

— उनकी श्रमा मन में आती होय, तब उनके

का श्रमा कर्त निरन्तर करने, श्रमा प्रमाण के

। नि निम्न वृत्ति श्रमात्त व का स्वयं मन

धार कर निम्न कर्त. [४] निरा का निम्न है-

निरा हो- उनके दृष्ट में ही श्रमात्त प्रवेश

न कर ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुची कारक स्वरूप वृत्ता के तथा अनेक प्रभोतर कर-पका करे, की वो किसी का डगाया उगे नहीं।

३. "संवेगणी" अर्थात् सं-सीधे, वेग-रस्ते च-लावे सो संवेगणी कथा। इसके ४ भेद (१) जिन २ वस्तुवांसे संतारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता वृत्तावे की देखो! देखते २ वस्तुवांके स्वभावमें, स्वरूपमें कैसा फरक पडता है। ताजी वस्तु और वासी वस्तुको देखनेसे मालम होता है। वस्तुका स्वभाव क्षिण भंगू र हैं, अर्थात् क्षिण २ में पलटता हैं। क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरममें था, वो ठन्डी हुये पीछे न रहा: ऐसेही इस शरीर को देखो। उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक, कैसी सुन्दर तामें वृद्धी होती है। फिर वृद्धवस्था में कैसी हीनता होती है, और शरीर नष्ट हो जाता है। ऐसे सर्व जगत्के सर्व पदार्थ जानना। क्षिण २ में नव २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं; और ज्युने विनाश होते हैं। सब पदार्थोंमें कुछ एकही दम फरक नहीं पडता है; परन्तु पडता २ ही पडता है, और एकदम पानीके परोदे जैसे। विनाशको प्राप्त होते हैं। ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे: फिर मनुष्य जन्मादी सामुग्रही प्राप्त हुई है। उसकी दुर्ल-

भोगवृत्ते है. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरे
वरणन करें, क्षिणिक सुखके लिये. सागरोपमका दुःख
पावे. इत्यादी रीति समझाणें से वो पापको छोड धर्म
मार्गमें उद्यमवन्त होवे. [३] "न पेम रागो परमत्थी
बन्धा" अर्थात् जगतमें प्रेमराग (लोह-फास) जैसा
और बन्धन नहीं है, प्रेम रागरूप फासमें फसे जीव
अपना सुख दुःख, भले दुःखका विचार नहीं करते. स्व
जन भित्रका पोषण करने. अनक आरंभ करते है, प-
रन्तु उनकी स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये,
जब 'कुंठू पत्री' देते हैं. तब कित्ता परिवार भेला हो
ता है, ऐसेही संकट पडे तब, स्वजनकी सहायता
लेने 'संकट पत्री' देवो तो कित्ने स्वजन आयंगे ०
अर्जी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही
कहेंगे की क्या लडू किये बिन नाक जाना था ? इ-
त्यादी कह उलटा अगमान करते है, ऐसे मतलबीयों
को पोष. पापका भारा अपने सिरले, नर्क तियं-
चादी गति में किये, कर्म के फल एकलेही

० एक मगदी करीन कहा है:-संपदा बहु भाचीपावंगे, सोपर
जमा रहती त्या दधि । गरीपास तै रष्ट होउनी, बंधू सोपरे
दायी सोइनी.

लों ने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया कभी-
 संयोग मिल हंसा दिया. तो कभी अशुभ संयोग
 ला रोवा दिया. कभी नवग्रहवेक तक उंचा चूड़
 और कभी सातमीं नर्क के तले नीगोद से दवाया
 भी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी भि
 रूप बना, अपने उपर सब को धुकाय. ऐसी २ अनंत
 बिटवना इन पुद्गलों ने अपनी अनंत वक्त करी हैं ?
 और भी जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां त-
 क पुद्गलों का जो स्वभाव है की पुद्=पूरे (मिले) औ-
 र गल=गले (विछडे). वो कादापि नहीं छोड़ने के फि-
 र कौन मुख बने की उनकी संगत में लुब्ध हो, अप-
 नी फर्जाती करावें. ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को
 सुख चाहवो तो. पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान
 दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं. इनके स्वभावमें कभी
 वी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी
 निजात्म गुण हैं. उनको पहचान, अखंड प्रीति करे!
 की वो अपने रूप चैतन्य को बना, अनंत अक्षय अव्या-
 बाध सुखका भुक्ता बनावे, इस बौद्धसे मोक्ष के तर्फ
 श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निर्वेगणी-अर्थात् निर्वृतनी संवेगणी में सं-
 गारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निर्वेगणी २

[illegible]

जरूर भोगवेंगे, यथा द्रष्टांत-अवल पक्कान भोगव
 फिर कांदा (प्याज) भोगवे तो. उसे पहले पक्कानकी
 उकार आयगी, और फिर कांदेकी. दूसरा प्रत्यक्ष देखते
 हैं. एक पालखीमें बैठा और चार उठाके चलते हैं.
 पालखी वाला उत्तर गार्दीपे लोटता है. और उठाने
 वाले पांच दाव (चांप) ते हैं, वो पांचही मनुष्य एक
 सें होके प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल भोगवते हैं, और जो
 कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बैठ जाय.
 और बैठने वाले पालखी उठाने लग जाय, यह प्रत-
 क्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें
 भोगवते द्रष्टी आते हैं, [४] ऐसेही कितनेक ऐसे कर्म
 हैं की, इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें
 भोगवेंगे. जेने कितनेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखते
 हैं. तय मनमें शंका लाते हैं की, जो धर्मसे सुख हो-
 ता होना तो, यह दुःखी क्यों? परंतु वेन लानेका
 कुछ कारण नहीं है. प्रत्यक्ष देखीये, अभी कोई औषध
 लेते हैं. वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती हैं.
 परन्तु मुइतपे, पथ्य पालन सें गुण कर्ता होती है. ज-
 हां तक पड़ेला विकार क्षय नहीं होगा. वहां तक
 पहले औषधीका दुन दर्शना मुश्किल है, तैसेही गत
 अशुभ कर्मका जोर कभी न होवे, यतंतक धर्म

फल दर्शना मुद्राफल है, परन्तु इला न विश्व समझी
 य की, "करणी नगा फल ज्ञाना, कर्द्वय न निर्फल
 होय" जो जन्मनेही मुझा दर्श आने है, जो पूर्वोपर-
 विन प्रयकाही फल है, एमही हांकी करणीभी आ
 ने फल देगी, निर्धननी कथाका मुख्य है नु एह है की
 "कौण कस्मा न मारक अर्या," अर्थात् केन कर्मक
 फल अवश्य भव भोगवनेही पडते है; फिर इस जन्म
 में देवी, या आगे के जन्ममें ऐसा समझ कर्म प्रत्यक्ष

बचने प्रयत्न हेमदा करने रहिये.

भाचन, प्रेम्णा, और प्रियद्वया कर, जो जान
 एका किया है, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथा
 कर उसका लाभ दर्शने की देना चाहिये.

एह धर्म व्यानके चार आलम्बन आधार कहे
 है, इन चारही काममें धर्म व्यानी मनकी रमण कर
 ईर्दग्याकी विचार मनमें निघार, आत्म साधन अ-
 र्ही मार कर, इष्टिनाथ सिद्ध कर सके है.

चतुर्ग प्रणिशेखा-धर्मव्यानस्य अनेप्रक्ष

॥ मंत्र ॥ अमरस्य सागरस्य चत्वारि अणुदेह पद्मना नन्दार

अणिशेखणेदेह, अमरणाणुदेह, पद्मनाणुदेह,

समाराणुदेह।

अर्थात्—धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा भगवंतने फरमाइ सो कहे हैं, धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार अनुप्रेक्षा उयोग युक्त विचार करते हैं. सो १ अनित्यानुप्रेक्षा. २ असरणाणुप्रेक्षा. ३ एकत्वानुप्रेक्षा. और ४ संतारानुप्रेक्षा.

प्रथम पत्र—“अनित्यानुप्रेक्षा”

धर्मास्ति यादी ७ पट द्रव्य रूप लोक का; द्रव्य द्रष्टिसे अवलोकन करने से छहो द्रव्य, अपने २ गुण में. व स्वरूपमें. शाश्वत (नित्य) हैं. परंतु इन्की पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रूप. उत्पन्न होती हैं,

७

नाम	धर्मास्ति	अधर्मास्ति	भावास्ति	कालास्ति	जोयास्ति	पुत्रदास्ति
द्रव्यमे	एक	एक	एक	अनंत	अनंत	अनंत
धर्ममे	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण	लोक प्रमाण
कालमे	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत
जोयमे	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत
पुत्रमे	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत	अनंत

की रही हुई घटिका पूर्ण होने से क्षिण मात्र में सरीर संपत्ती का क्षय हो जायगा ! फिर तुम कोट्यान उपाय कर, गड़ घटि को बुलावोगे तो वो नहीं आने की और पस्तावोगे तो भी कुछ नहीं होने का. ऐसा जाण है हितार्थी ! जो बाकी आयुष्य रहा हैं. उसे व्यर्थ मत गमावों. यह चिंता मणी रत्न तुल्य घटि का, कू कर्म में व्यय (खर्च) मत करों, इस क्षिणक संसार की क्षिणिक स्थिती को प्राप्त हो. रही क्षिण में सुधारा करने का हो सो कर घडी को लेखे लगावों.

और जो तुम शरीरको नित्य मानते होवो तो यहभी नित्य नहीं है, क्षिण २ में इसके स्वभावमें, रूपादी गुणोंमें फरक पड़ता हुआ परोक्ष और प्रत्यक्ष भाष होता है, देखीये, अब्बल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमें आ उत्पन्न होता है. तब माताका रुद्र, और पिता का शुक्रका, अहार कर. मांड (चांववलों-के धोवण) जैसा तरीरको प्राप्त होता हैं. फिर काल

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, नसा पाहि नियच्छ,

अहम्भ कुण माणत्स, अफला जांवे राइ उ.

अर्थ—जो जो दिन रात्रां जते है, वो पंछे नहीं आते हैं, कथनों-के निष्फल जते है. और इसके अर्थों कायामें कहा है, धर्मके दिन रत्न रत्न जाते है.

भस्म करदीया, यह इस तरीरकी दिशा क्षिण २ में पलटती हुई दिखती है. यह तरीर नित्य (सदा) अर्धनित्य रूप धारण कर्ता है, समय २ में पलटता है, बालवस्थाको तरुणपण गिलता है, तरुण पणको वृधपणा और वृधपणका काल भक्षण कर जाता है, यह मच्छ गलागल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये की बालका तरुण और तरुणका वृध, जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा वृध का कुछभी विचार नहीं है. कालरूप घटीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहें है, जैसे घटीके दो पट होते है, तैसे कालरूप घटीका, भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, अयुष्य रूप खीले से अडके जो रहे हैं, वो बचे हैं, 'खूटा छूटा के आटा हुवा', अपने देखते घटतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला; ऐसी इस तरीर की दिशा देखते जो इस तरीरको नित्य जान. मोह

॥ उपर-अयुष्य तन्त्रे भवतार रूप बाली से मीसे. क. हरी शीत पद्मास साडे मोध पडो. किनार सरो न कोप. भस्मी से नारी सगाह. नन्ने नग्यो होप. इसे तब टोक दुगाह. रूप भा रा तब तैरगा. दन हुआ सब खोस्ता. पवित्रता साधे रों रहे भव पर न छे रोस्ता. !

जितनी शिघ्र करलीजीये, की इसे छोड़ती वक्त पश्चा-
ताप नहीं करना पड़े.

जैसी सरीरकी अनित्यता है, वैसीही कुटुंबकी भी समजीये, क्यों कि मात पितादी स्वजन भी, उदा-
रिही सरीरके धरण हार है, अपने पहले आये, मा-
ता, पिता, काका, मामा, बगैरे, अपने दरोवर आये,
भाइ, बेन, स्त्री, मित्र, बगैरे अपने पीछे आये, पुत्र,
पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखते २ आयु
खुटे चल गये हैं, चल रहे है, और रहे तो एक दिन
सब चले जायेंगे, "जो जन्मा है, तो अवश्य मरेगा"
इत लिये कुटुंब परिवार को भी अनित्य समजीये.

जैसा कुटुंब अनित्य है, तैसे धनभी अनित्य
है, इसे 'दोलत' कहते हैं, अर्थात् आना और जाना
ऐसी दोलत (आदत) इसमें हैं, तथा पोशकको क्षिण
में हताना और क्षिणमें लुलाना ऐसी दो आदतें हैं. यह
किसीके पास स्थिर नहीं रहती है. "जर जोरु और
जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमनि तीजोरीयोमें,
खूब उंडे खड्डेमें या नगीा समशेरोंके पहेरेमेंभी, खूब चंदो-

† पृथ्वी की हड्डी आदी पदार्थों का एक मुत्रा दी-अग्नी
का जगारणायादी वायुः आदोन्वास और आकाश रूप पोशक
एवंच भूत

झांहीज प्रत्य पाता है, या रह जाता है, और आप आया था वैसाही, इकेला जीव आगेको चला जाता है, ऐसा तमाशा एकही वक्तमें पूरा नहीं होता हैं; परन्तु अनंत काल से येही रीत चली आती है, और चली जायगा, मिलना और विछडना, येही पुद्गलोंका धर्म हैं, सोही बना रहगा ! अच्छा का बुरा और बुरा का अच्छा; नवा का ज्युना और ज्युनाका नवा; कोइ प्रतक्षतासे और कोइ परोक्षता (छुपी रीत) से, पुद्गलोंका रूपांतर होनेका जो स्वभाव है, वो होयाही करता है, यह तमाशा देखते हुयेभी इसे नित्य मान लुब्ध हो रहे हैं, इससे ज्यादा अश्चर्य और कोनसा होय ?

मुठ प्राणीका आयुष्य ज्यों ज्यों हीन स्थिती कों प्राप्त होता है, त्यों त्यों ममत्व और पापकी वृद्धि करता हैं, और उनके फल भुक्तने आपभी रूपांतर-पा के रौरव नर्कमें गिरता है. तब असाध्य दुःखसे घबरा कर रोता है.

भाइ ! अग्नी ज्ञानसे शीतलता, और विष भक्षणसे अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती जन पुद्गल के संगसें सुख चहाते हैं. इन अज्ञको कैसे समजावे.

जाते हैं.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त बहुत आकाशमें संध्याराग [विचित्र रंग] का दर्शाव होता है, और क्षिपंत्रमें अन्धकार फैलजाता है.

इत्यादी अनित्यता दर्शानेके अनेक बनाव हमेशा बनते हैं. और देखते हैं, परं मोहकी धुन्धी में मुग्ध बने, कौन विचार करें!!

एक समय राज्यारूढ महोत्सव की धामधूम लग्नका उत्सह द्रष्टी पड़ता है; और उसी स्थल उस-ही समय, पुद्गलोंका रूपांतर होनेसे मृत्युआदी निपजनेसे हाहाकार मच जाता है स्मशान गमनकी तैयारी होती कौं, क्या नहीं देखते हैं? ऐसे २ अनित्यता बतानेके जक्त में थोड़े साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहूं, जिन २ प्रमाणुओं पदार्थों कर तेरे सरीरकी रचना हुई, और पोषणता होती हैं, वेही प्रमाणु गये कालमें तेरे शत्रु बन तेरे धारण किये हुये अनंत सरीरोंका नाश किया था, की उनके साथ तूं अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पड़े, येही तेरे सरीर के घातक बन जायेंगे मतलबकी पुद्गल संयोगसेही संतन्यन्ध जुड़ता है. और संयोगसेही बिखरता है.

श्री भगवतीजी सूत्रमें 'अविचय' मरण कहा

जब जीवोंके देखते पदार्थोंका नाश होता है, तो जीवकोही पश्चात्ताप होता है, की हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोड़के जीव जाता है, तबही बोही रोता है, की हाय इस सायबी को छोड़, अब मैं चला न की वो पदार्थ रोयंगे, की मेरे मालक, कहां गये. क्यों कि उनके मालक बणने वाले अनेक बैठे हैं.

ऐसा समज है सुखार्थी धर्मार्थी जीवों! इस अनित्यानुप्रेक्षा के सत्य विचार से अनित्य अशाश्वत वस्तुपे से समत्व त्याग, निजात्म गुण ज्ञानादी ही रह नित्य शाश्वत, अक्षय अनंत उनमें रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र—“अस्तरणाणु प्रेक्षा”

सादाद मतसे हरेक तर्फ अनेकांत द्रष्टीसे देखा जाताहै, निश्चयमें तो कोई किसीको तरण कादाता आश्रम का देने वाला नहीं है क्योंकि सर्व द्रव्य अपनीर शक्ती के बलसे ही टिक रह हैं, इस सबबसे कोई किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसे पक्क निमित्त माल यह जीव दुःख, कष्ट उत्पन्न हुये, अन्यके तरण

मित्रको सरण दाता समजता होय तो भी तेरी भूल
हैं निर्मोह बुद्धीसे देख. जो तूं द्रव्योपारजनमें कुशल
सबकी इच्छा प्रमाणें चलनें वाला हुवा तो माता पि-
ता कहेंगे. हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेंगा मेरी वा-
हां है, बेहन कहेगी मेरा वीरा हीरा है, स्त्री कहेंगी
मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) है. इत्यादी सर्व कुट-
म्ब दुःख हाजीर रहे, जी! जी! करते हैं. और जो
मूर्ख बेकमाबू होय तो; मात पितकहे पेटमें पत्थर पड़ा
होता तो नीम (मकान के पाये) में देने काम आता,
भाइ कहे मेरा बैरी है. बेहन कहेकिरका भाइ लाइ
(गरीब) स्त्री कहे मौल्या (मोल लिया गुलाम है) इ-
त्यादी सब सज्जनों की तरफतें अपमान और दुःख प्रा-
प्त होता है. स्वार्थ लुब्ध मातानें ब्रम्हदत्त चट्टकृत को
रनेका उपाय किया, कन्क रथ राजा जन्मते पुत्रों.
मारे, भृत बाहुबली दोनों भाइ आपसमें लडे. को-
न कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें
किया, दुर्योधननें सब कूटम्बका संहार किया.
सूरी कंता राणीनें प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्रा-
ण कर लिये. ऐसे २ प्राचीन अनेक दास्तले हैं.
तनान में बणाव बण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन
त कदापि न होने वाले.

तृतीयश्राव्या-धर्मध्यान

ता नहीं, अग्निमें जलता नहीं, हवामें उड़ता नहीं, यम जैसे प्रा
 वज्रमय भीतसे भी रुकता नहीं, ही दबता-डरता नहीं है, काल बडावे विचार
 ल, वृथ, तरुण, नव प्रणेत, धनाढ्य, गरीब, दुःखी अनेकों के पालने वाले और अनेकोंके सं
 वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुओंको, दिपवाली य तेंहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं दु
 उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका, इत्या किलीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो शप
 टेमें आयाही चाहिये, की तुर्त गट काया, अनंत प्रा णीयोका अनंत वस्तुओंका भक्षण अनंत वक्त किया
 तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नी सेभी अधिक सदा अलर्ती महा विक्राल राक्षसही हैं, महा
 प्रतर्पी हैं, बडे २ सुरेन्द्र, नरेन्द्र, इतकी द्रष्टी मात्र से अत्यंत त्रास पाते हैं। भान भूल जाते हैं, आर्त, रौद्र,
 ध्यान ध्याने लगते हैं, उनका भी मुलायजा कालकों नहीं हैं यह तो फक्त अपने मतलब साधनेकी तर्फही द्रष्टी
 रखता है। ऐसे निर्दयी निर्लज्ज, काल बेतालके फास में पडे जीव जो अन्यके तरण से सुख चहाते हैं, वो
 मृगजल से प्यास बुंजाना चहाते हैं, बांझा का खिलाना चहाते हैं, या अ...

एक मनुष्य बन में सूता था, की वहां रात्री को भचित्य दावा नल (आग) लगी, और उस मनुष्य को घेर लिया. उश्नता लगते वो तुर्त जागृत हा, एक वृक्षपे चड बेठा, और चारही तर्फ जंगली जानवरों को जलते देख, हँस ने लगा. की यह जला. यह मरा! परंतु मुड यों नहीं समजता है की. यह वृक्ष जाला की मेरीभी येही दिशा होगी. अर्थात्-जैसे जगत जीव मरतें है वैसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इस्मे संशयही नहीं !!

बाप, दादे, गये वोभी इस धन, कुटम्ब. कर अपना रक्षण नहीं कर सके, तो तुम को न स्मर्ष वली बच सकोगे.

निश्चय समजीये. सब सज्जन मुह ताकतेही ख. डे रहेंगे. सब संपत्ती निजस्थान ही बडी रहेगी, और चित्त मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दिशा होगी.

• स्त्रिया—कंचनके आसन. धुलरासन कंचनके पलंग, सब इनान्त पर रहे हाया इट कंचनने, गोंदे मुदवा नने, कपडे जाम दानीमे परी बंधे ही रहे. बेटा और बेटा दोलतका पार नहीं, भरागेके इन्हे ताके ही गदे रहे. देह छोड दिगे नर हो चले दिगम्बर, कुडके कुटम्ब सब सोतेही लडे रहे.

एसा निश्चय कर, हे सुखार्थी-जनो; इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मादी-समग्री-कों-अन्यके-सरण-के-लालच-में-पड़-मत-गमावो-निश्चय-करो-की,, इस-जग-त्तका-कोई-भी-पदार्थ-मेरा-रक्षक-नहीं-हैं; सब-भक्षक-हैं, एसा-जान-उनपैसे-ममत्व-त्याग-—तरण-तारण, दुःख-निवारण, निराधार-के-आधार-गरीब-निवाज, महा-कृपालु, करुणा-सागर, अनंत-दुःखा-सें-उधार-के-कर्ता-विकाल-काल-व्याल-के-दुःख-के-हरता, अनंत-अक्ष-अजर-अमर-अविन्याशी-अतुल्य-सुख-रूप-मोक्ष-स्थान-के-दाता-व्यवहार-में-तो-श्री-अर्हत-सिद्ध-आचार्य-उपग्या-और-साधू-यह-पंच-प्रमेष्टी-हैं, और-निश्चय-में-अपने-आत्मा-गुण-ज्ञानादी-त्री-रत्न-की-शुद्धता-हैं-जिनका-अश्रय-सरण-ग्रहण-कर-है, अजरामर-आत्मा-परमानंदी-परम-सुखी-बन!!

तृतीय पत्र—“एकत्वानुप्रेक्षा”

जैसे-सुवर्णका-और-मट्टीका-अनादी-सम्बन्ध-होने-से-दोनों-एकही-रूप-में-दिखते-हैं-अर्थात्-सुवर्णभी-लाल-मट्टि-जैसा-दिखता-हैं-परन्तु-हैं-दोनों-अलग-२, जो-दोनों-एकही-होय-तो-मट्टी-में-से-सुवर्ण-जुदा-निकले-नहीं.

रूप मेलको दूरकर चैतन्य निजात्म रूपको प्राप्त होता है.

ऐसेही दूध में घी मिला होता है, और उसे निकालने खटाइ, खाइ, भाजन, मथक (मथन करने वाला) का संयोग होनेसे छछ रूप मेलको छोड़ घृत अपने रूपको प्राप्त होता है, तैसेही अतर और पुष्प लोह और चमक, वगैरे अनेक द्रष्टांत कर जीवका और कर्मका अनादी सम्बन्ध समजना. और सुवर्ण की तरह इन पदार्थोंको अनादी सम्बन्ध लुडाके, निजरूप में प्राप्त करनेके, अनेक उपाय समजने. तैसेही जीवकोभी अनादी कर्म सम्बन्धसे लुडाके, निजरूपमें प्राप्त, करने के, वरोक्त ज्ञानादी चार साहित्योंका संयोग अक्षीर (पुक्त भक्षम) उपाय हैं.

बड़ा विद्वान और सदा शुची पवित्र रहने वाला वारुणी (मदिरा) के नशे में गर्क हो, अशुची से भरे उकरडेपे लोटनेमें गादीपे लोटने जैसा मजा मानने लगताहै. और गटरोंकी हवाको वगीचेकी सहल समजने लगता है, उसे अशुचीसे निवृत्तनेके बौधकको मूर्ख जाण गाली प्रदान करने लगता है. वोही जीव नशेसे निवृत्त वाद, अपनी कू दिशा देत्व, शरमाने लगता है, और किसीके विना कहेही उकरडेको त्याग, (छोड़) चला जाता है. ऐसेही जीव रूप पवित्र पुरुष, मोह

मिले, इनके प्रसंग कर मेने ४ गत २४ दंडक ८४लक्ष जीवा योनीमें, उच्च नीच जाती स्थानमें, अनंत विट-वना भुक्ती है. अब इनका-सङ्ग छोड़ मुजे एकत्वता धारण करनी योग्य है. ऐसे विचार से सर्व सम्यन्ध परित्याग कर, वितराग-दिशाको अवलम्बे.

जैसे बड़लो के फटने-सँ, सूर्य स्व प्रकाश को प्राप्त होता है, तैसेही कर्म-पङ्कल दूर-होनें सँ आत्म-के निजगुण-ज्ञानादी प्रका-सित-होतें हैं, और चेतन्य अपना स्वरूप पहचानता हैं.

एक त्वानु-प्रेक्षक, विचार करे-की, में कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने-रूपतो-एकही-सरीर-का-धारक हूं, परन्तु जो-एक-मानू तो. मातृपिता-कहें मे-रा पुत्र, क्या में पुत्र हूं? बेहन-कहे मेरा भाइ. तो क्या में भाइ हूं? स्त्री-कहें भरतार. तो क्या में भरतार हूं? पुत्र-पुत्री-कहे पिता तो क्या में पिता हूं, यों कोई-काका. कोई-बाबा, कोई-मामा-माशा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सत्र मेरा २ कर मुजे चोलातें हैं, अब विचार होता है कि में कौन हूं, और कित्ता हूं, हा, ! अश्चर्य; मेरा पत्ता लगना हीं, मुजे-मुशकिल-हुवा. में एक-हो-कित्ने-नाम-धारी. कित्ने-का-हुवा, परंतु जो-निश्चया-त्मक-हो-विचारता हूं तो, यह-सब-कर्मों-के-चाले-हैं;

हीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही है, फक्त प्रेक्षक कों देखाने हैंसाने. फत्साने. हलाने, अनेक भाव दर्शाता हैं. और अंतर में वो सब से अलग हैं, तैसेही संसार रूप नाटक शालामें चैतन्य नट कर्म संयोग अनेक उंच नीच. एकेंद्री से पंचेंद्री तक चंडाल से चक्र वृत्ती तक, रूप धारण कर. उस रूप प्रमाणें अनेक योग्या कर्म किये. और अखीर एकही कायम नहीं राह ! सब निज २ स्थान रहगये. और चैतन्य अलग ही राह. यह देखीयें कर्मों का तमाशा. अब जरा कर्म रूप नशाका उत्तार आया दिखता है, जिस से थोडा भान आया, और ऐसा विचार होने से कर्मों की विचित्रता समज भेद विज्ञानी बना हैं, तो अब विभाव कों त्याग स्वभाव में रमण कर.

देख ! जब तूं आया (माताकी योनीसे बाहिर पडा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेक गये, वो इकेलाही गये. वैसे तूं भी इकेलाही जायगा अशुभ कर्म के फल भोगवने नर्कमें, और शुभ कर्मके फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही गया ! धन, वस्त्र, मकान, भोजन, भुषण, वगैरे का हिस्सा (पांती) लेने वाले अनेक स्वजन हैं. परन्तु कृत कर्म के फलों-

' , -

‘संसारति इति संसारः’ जिसमें परिभ्रमण करना पड़े, सो संसार, चार तरह का है: उन्हे चार गति कहते हैं गतागत (आवा गमन) करे सो गति चार:

१ नर्क गति न=नहीं+अर्क=सूर्य. अर्थात् अन्धकारसे भरी हुई अन्धकार मय सो तम+ गति यो नर्क गतिके ७ स्थान अधो (नीचे) लोकमें एकेक के नीचे है, (१) ७ रत्न प्रभा=श्याम वर्णके रत्नमय भयंकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अति तिक्ष्ण सर्व स्थान हैं. (३) ‘वालू प्रभा’=भाड़ भूजके भाड़की वालू (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, वोरु के कीचड़ मय सर्व स्थान (५) धुन्म प्रभा, राइ मिरची के धूम्र(धूँव) से भी अधिक तिक्ष्ण धुन्नमय सर्व स्थान (६) तप्त प्रभा भाद्रव की यटा छाड़ अन्मावस्था की रात्री से भी अत्यंत अन्धकार मय सर्व स्थान (७) तम तमा प्रभा: घोरा-नपोर अन्धारे मय सर्व स्थान यो तातही नर्क के गुण निष्पन्न नान (गोत्र) हैं इन ७ नर्क में ४२ अंतरें (खाली जगा) ४१ पांथड़े नेरी वे रहने की जगा, ८४

• दान अन्धमें नर्कका तम गति भी कत है.

मन्त्रा, वंश, सौदा, भेजता, इत्या. नाना. नानाका नर ३ नर के नान

वैसेही फल देते हैं. जैसे मांस भक्षीको उसीका मांस तोड़के खिलाते हैं. मदिरा पानीको तरु आ गर्म कर पि लाते हैं. पर स्त्री भोगी को लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते हैं. हिंसाक जैसी तरह हिंसा करे, वैसी- ही तरह उसे मारते हैं. इत्यादी अनेक कष्ट दुःख ने- रीये को देते हैं. वो बेचारे प्रार्थान हो अक्रांद करते सहते हैं.

२ आपसकी वेदना=तीसरी नर्कके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते हैं. वो नेरीये अनेक वि- काल भयंकर खराब जंगली रूप बनाके, आपसमें ल डते हैं. मरते हैं, हाय त्राहा करते हैं, ज्यों नवा कु- चा आनेसे दूसरे कुत्ते उस पे दूट पडते हैं वैसा.

३ क्षेत्र वेदना=१० प्रकारकी हैं. १ अनंत छुट्टा=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ खिला दे- वे तो भी तृप्ती नहीं आय, और तावे उम्मर खाने एक दाणा नहीं मिले. २ अनंत त्रपा=सर्व जगत्का पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे, और पीने एक बुंदभी नहीं मिले. ३ अनंत शीत^१ लक्ष्मनका लोहेका गोला बिखर जाय ऐसी ठण्ड शीत ज्योती स्थानमें हैं. ४

१ पदवेद्य ४ नर्क उष्ण ज्योती है

धलचर^{१०}, खंचर^{११}, उरपर^{१२}, भुजपर^{१३}, यह पांच सत्री^{१४} और पांच असत्री^{१५}. इन १० के प्रजासा अ. प्रजासा, यों $१० \times २ = २०$ यह सब मिल ४८ भेद ति-र्यच के हुये.

यह बेचारे कर्मा धीन हो परवत्त में पड़े हैं. मट्टी कों खोदते हैं. फोडते हैं. गोवरादिक मिला के निर्जीव करते हैं. पाणी कों गर्म करते हैं. न्हावण, धो वण वगैरे गृह कार्यमें डोलते हैं. क्षरादी मिलाके निर्जीव करते हैं. अग्नी को प्रजालते हैं. बुजाते हैं. पाणी मट्टी यादी से मारते हैं. वायू पक्षा, झाडू, खांडन. झटक, फटक, उधाडे मुख बोलना, वगैरेसे मारते हैं, विनशपति कों छेदन, भेदन, पचन, पीलन, गालन अग्नी मशाला वगैरे से निर्जीव करते हैं. वेंद्री, तेंद्री, चौरांद्री, मट्टीके पानीके हरी-लीलोत्रीके इंधनके, अना जके. वस्त्र पात्र आदीके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरंभ सम्भारंभ करते. धुन्नादिक प्रयोग से शीत, उन्न. वृष्टी, सें आदी अनेक तरह उपजते भी हैं. और मरते भी हैं. जलचर पाणी खुटनेसे. नवा पाणी आ-णे से या धीवरा दिक मारते हैं. स्थल चर-या वनचर

१० पृथ्वी चले. नापादिक. ११ अचलनेसे परवत्तदि. १२ पंख सार चले सत्रीदिक. १३ भुजने से इन्द्रादिक.

जके दुःख-मोक्षन आया है.

है। ऐसी निरुप गति में अपना जीव अनंत तक उप-
भार जाते हैं. इस दोनों की कठिना कल घाला कल
की वृत्त देते हैं. वही प्रिय दोष से आवले रोग २
ते हैं. और मतलब पूरा है. कठिना कल घाला पादी
ते हैं. खल पान पूरा नहीं देते हैं. और काम पूरा न-
थाक से, मुक्ति हो पड़े है. भास रोक के उठा-
से भारते हैं. वृत्त चलते हैं. दुख से, रोग से, या
भर देते हैं. कठिना कल घाला से बाधन है. कठोर प्रहार
आलोचन चलने वाले भारी वचनके उपर, असहाय बन
वत करी वृत्त जैसे उत्तम पदार्थके दाता. मालिककी
देवताजी साकारने वाले, खलियादी अनेक काममें म,
वासी गी (गण) महिषा (मम) विकर्मा निर्मल्य वस्तु
भी भार डालते हैं. वचनमें डालते हैं. ऐसेही मामके रह
संलग्न करते हैं. ऐसे निरुप गति की भी रसमयी निर्दे-
अनप, पास फल आदी निर्मल्य मिल जिला खा के
जान पूरा करते हैं. घर बख रहन, हीन, दीन, गरीब
काते हैं. कौड़े, कंक, कौच, कौड़, बाली मोक्षमें पड़े
पुष्टि और वचन दीन, गण, पुष्टि, भूष, व्यास वदन

कर सके सो मनुष्यके ३०३ भेद, अस्ती', नस्ती', यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो भूमी मनुष्यकी उत्पत्ति के १५ क्षेत्र, १ भर्त, १ रावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विपमें और यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र घातकी खंडमें और यही ६ पुष्करार्थ द्विपमें यों $३+६+६=१५$. वरोंक्त तीनों प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके कल्पवृक्ष से नहीं उपजीविका होवे. सो अकर्म भूमी मनुष्यके ३० क्षेत्र १-हेम वय २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास, ५ देव कुरु. ६ उत्तर कुरु, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्विपमें, येही दो दो क्षेत्र होनेसे १२ क्षेत्र घातकी खंडमें, और येही १२ क्षेत्र पुष्करार्थ द्विपमें यों $६+१२+१२=३०$. जंबुद्विपमें के चूली हेमवन्त और शिखरी प्रवत मेंसे आठ दाढ़ों (खुण्ण) लवण समुद्रमें गड़ हैं. उन्हें

१ हमा यार (शस्त्र) से. २ लिखन का ३ कृपाण (खंती)

• १ मंतंगा वृक्ष=१ मधुर रस दे २ भिंगा वृक्ष= वरतन दे. ३ तुमो पंगा वृक्ष= नानिच मुगावे ४ दिव वृक्ष= दिवा जैसा प्रकाश करे. ५ जेइ वृक्ष= तूर्य जैसे प्रकाश करे. ६ कितगा वृक्ष= भिचित्र रंग के पुष्प हार दे. ७ चिन रस= इच्छित भोजन दे. ८ मन वंगा वृक्ष= रत्न जड़ित भुषण दे. ९ निह गारा. रहने अच्छा मकान दे. १० अने पाणा वृक्ष= श्रेष्ठ वस्त्र दे. १० अकर्म भोगों और १६ अवर द्विप. ने गढ़ों बाँटे मनुष्यों को इन १० कल्प वृक्ष से इच्छा पूरी हो तां हैं.

एकक द्वाविं सट ३ दिप है. तो आठ द्वाविं ७×८
 —५६. अंतर दिपस भी, अकम सुभी जैसे मनुष्य रह
 स है यह १५+३०+५६-१०१ मनुष्यके क्षेत्र हैं, इन
 स जो मनुष्य होते हैं. उनके दो भेद अग्रजाता और
 प्रजाता, यह २०२ है, और १०१ अग्रजाता मनुष्य
 के १४० स्थानों जो समुल्लिख (समावस) उत्पन्न
 होते हैं. वो अग्रजातावेही माने हैं. इस लिये. १०१
 भेद उनके दो सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के है.

- कम भीमी स महा विवेह छोड़, बाकी के क्षेत्र
 स छि आरे की प्रवती स कभी पुरालिक सुलकी पूर्वा
 और कभी हानी होती है सदा एकसा न रहना वा
 भी दुःख का कारण है. और महा विवेह स सदा च-
 त्रु कल प्रवृत्ता है. तो वहां भी विचित्र प्रकार के
 मनुष्य हैं मनुष्य की जहां कम कर के उपजाका
 है वहां दुःख ही है; अस्मा ह्युपायान् उपजाका

* १ उषा=विद्युत्, २ वामन=मनुष्य, ३ वि=विहारी, ४ व-

वृषा=गाऊँ मनुष्य, ५ उच=उचरी, ६ वि=विहारी, ७ वाम-

रतम, ८ वृष=रही (वीह) व, ९ मृक=मृक (वीह) व, १० मृक

वृषा=विहारी=उचरी मनुष्य, ११ मनुष्य, १२ मनुष्य, १३ मनुष्य

की फलवृत्ति, १४ वृषा=उचरी मनुष्य, १५ मनुष्य, १६ मनुष्य

करने वाले, कसाइ होके बेचारे गरीब निरपराधी जी-
वोंकी घात कर, महा जञ्जर पाप उपराजते हैं, सिपा
इयो हो के अपराधी और निरपराधी को विनाकार-
णभी मारते हैं. कित्नेक राजादिक महा भागत संग्राम
करते हैं, कित्नेक स्वकुटुंब का संहारही कर डाल-
ते हैं. तो बेचारे ऐकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या?
शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमें आयाकी प्र-
णाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उप-
जीविका चलाने वाले वणिकादिक कसाइ, कूंजडे, क-
लाल, दाणेका, लोहेका, धातूका वगैरे अयोग्य बेपार
कर गजा उपरांत बजन उठाये, गामडे में भटकने हैं
गुलामी करतेहैं, वगैरे महा कष्ट सहतेहैं. कस्ती=दृष्टी
(खेती) के कर्म में अनेक ऐकेंद्री से पंचेंद्री तक जी-
वकी घात करते हैं शीत ताप ध्रुया तृपादी महा क-
ष्ट सहते हैं. महा मेहनत से तीनही स्तू चितिक्रंत क-
रते हैं, अच्ची वृत्त मान कालकी स्थितीका ख्याल कर-
ते मालम होता है की, द्रव्य (धन) है तो बहुत स्याम
कुटुंबकी अंतराय रहती है, कुटुंब है तो दरिद्रता रहती
है. धन कुटुंब दोनो है तो संप नहीं. मरीर रोगीला,
सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जत का, वगैरे अनेक दुःख भु-
क्त रहे हैं. कित्नेक बेचारे गरीब है, उन को अपने पेट

मनेकी ही मुद्रावत पड़ रही है। तो अन्य कटवका निरादा तो दूरी रहा, किन्तु अंगापान होन लगे, लंगड़े, अन्य, वहीरे, वगैरे है, किन्तु अन्य म्बुइ देसमें उरप है; कक नाम मान मज्ज है, उनके क में पड़िसी खाव है, धम के नाममेंही नहीं समजते हैं, मज्जका आहर करते हैं, वख रहिन रहते हैं, मा त, मही, पुर्वापादी से विमचार का कुछ विचार नहीं है, जंगलमें अटक २ जगह ले करते हैं, अकम मही के क्षयोंमें उरप है मज्ज वेब कुछ उत्तर ऊँच में सु लकी उलटता है, हरीवास रायकवास में सुलकी मज्जमन है और हैमय परपवयम सुलकी कलिसन है परंतु सब धमरहित मज्जक प्रणामी, प्रवाप पड़की लर है जब प्रपवय मान है, दशकल जगह कपाप में सुव आगवन है और मर जान है

अनर विषय रतन गल मज्जक म म म म है गली प हैगलिसि वन रतन है महीर मज्जक महीर हैक, किन्तु मज्ज दूधी धर्मिमह मज्ज म म म म है, यह मज्जक मज्ज है कुछ प्रपवयम दूधी म।

इत्या पय म म म म

सर्पिणम मज्ज, कक मज्जक म म क पम
 मज्जक मज्जक म म म म म म म म म म

जाते हैं परंतु द्रष्टी नहीं आते हैं सुक्ष्म रूप में एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजते हैं, और तुर्त मरते हैं. भिष्टयेभिष्टा, मुत्रमें मुत्र, करने से बगैरे इनकी हिंसा हर वक्त होती है.

ऐसे दुःखमय स्थानमें, अपन अनंत विटंबना भोग आये है. [मनुष्य जन्मकी श्रेष्ठता गिनने का इतनाही प्रयोजन है की, तिर्थकर साधू, श्रावक, वगैरे इसीमें होते हैं. और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नहीं मिल शक्ति है.]

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे हैं. असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण कुँवार, विभूत कुँवार. अग्नी कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुँवार, द्विप कुँवार, पवन कुँवार, स्थनी कुँवार, यह १० और १५ पहले परमाधामी [यम] देवके नाम कहे, सो २५ ही भवन पतिके जातके देवता हैं. यह पहले नर्कके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपत्नी, पानपत्नी, कंदिय, महाकंदिय, कोहडं और पंहं देव यह १६ व्यंतर तथा आन झमक पाणझमक, लेणझमक, सेणझमक, वत्थ झमक, पत्त झमक, पुप्प झमक, फल झमक, वी-

अन्यगति करते देवगति में सुखकी अधिकता है। सब वैक्रय सरीर धारी हैं। दिल चाहे जैसा, और दिलचाह जितने रूप बना सकते हैं। निरोगी, महा दिव्य सदा तरुण, सरीर होता है। आयुष्य जघन्य (थोड़ासे थोड़ा) दश हजार, वर्षका, और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का सैंकड़ो हजारों वर्षमें छुट्टा लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पुद्गलोंका अहार, रोम २ से ग्रहण कर लत हो जाते हैं। इनके विषय सुख अन्योपम सैंकड़ों हजारों वर्षके होते हैं। इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष, और बड़े नाटक में १० हजार वर्ष वेतिष्ठंत हो जाते हैं। उनके वहां रात्री नहीं है। सदा हा प्रकाश बना रहता है।

इत्यादिक सुखके देव भुक्ता हैं तो भी दुःखी क्योंकि, क्षुधा वेदनी तो लगी ही हैं। और सब ता बरोबर एकसे नहीं है, कितनेक इन्द्र हैं। कितने गायत्रिक (इन्द्रके गुरुस्थानी) हैं। कितने सामानि इन्द्रके बरोवरीके के] हैं। कितनेक आत्म रक्षक. (आदार) हैं, कितनेक प्रपादके देव हैं। कितनेक अ- (शैव्य) के देव हैं। गंधर्व (गायन करने वाले) गायकिये (नाचनें वाले) देव, अभोगी (नोकर) और प्रकीर्ण (अनेक विमान वाली) देव. ऐसे

किया. नर्क निगोद दुःख अपार है: एसा वह संसार दुःख से भरा है. वो सब दुःख अपने जीवने अनंत वक्त सहन किये हैं

गाथा धी धी धी संसारे, देव मरिउण जंतिरिय होइ:
मरिउणं राव रावा, परि पचइ निरिय जालाए
यगन्य शतक जन

अर्थात्—किसी को एक वक्त किसी को दो वक्त अधिकार दी जाती हैं. परंतु इस संसार को तीन वक्त अधिकार हैं. क्यों की देवता जैसे महा ऋद्धी, महा सौख्य के, भुक्ता मरके; पृथ्वी, पाणी, बिनाश-पति, यादी तिर्यच योनी में उत्पन्न होते हैं. और राजाओं के राजा चक्रवर्ती महाराजा मरके. नर्क में चले जाते हैं.

जरा अश्चर्य तो देखीये, जो चक्रवर्ती मरके उनका जीव नर्कमें गया है. और उनका सरीर ह्यां पड़ा है. उसका संस्कार (स्मशान में लेजाणे की) क्रिया अर्चना, श्रृंगार वगैरे करते हैं. और नर्क में उनके जीवों पर यम देव ताड़ मार करते हैं. देखीये क्या सरीर के हाल! और क्या जीव के हाल!!

महान पुन्योदय से मनुष्य जन्मदी तामग्री का दुर्लभ लाभ को तू प्राप्त हो. भव भ्रमण से श-

स्वर्ग (देव) लोक में उत्पन्न होने की सत्त्वा
(पञ्चग) है उसमें एक देवद्वय नाम वसु देवा
होता है, बाँसि सरीर छोड़ पीछे धर्म ध्यानी का और
व उस सत्त्वा में जाके उत्पन्न होता है और एक पु.
हुने पीछे पूरी प्रजा वापके उत्पन्नकों ओह (सरीरको
एक) के चहेटा होजाते हैं; उही एक उनके अंशोकिने

उच्च स्वर्ग में निवास मिलता है.
के लिये उहाँ उहाँ ध्यान की अधिकता होय त्यों त्यों
की अधिकता होती है. उस पुन्य फल को भोगने
हुती होने से. संपूर्णा कर्म की निर्जन्म न होते. पुन्य.
धार्म पुत्रल प्रगती की मिश्रता युक्त विचार और प्र-
इस धर्म ध्यान में एकाग्रता न होने से. अ-

धर्म ध्यानस्य-पुण्यफलम्.

यह धर्म ध्यान ध्याता की चार अनुप्रेक्षा (वि-
चारना) का स्वरोप कहते. इस में समा करने से धर्म
ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती है.
ल को प्राप्त कर.

दने का उपाय कर. अनंत आश्रय अन्वयाय मोक्ष सु-

देव देवीयों+वहां अत्यंत हर्षउत्सहाके साथ एकत्रहो हाथ जोड़, अत्यंत नम्रता से पूछते है; आपने क्या कर नी करी, जिससे हमारे नाथ हुये. तब वो देव० अवधी ज्ञान से पूर्व भवका हाल जान, और देवलोककी श्रद्धासे चकित हो, अपने पुर्वले सम्बन्धीयोंको चेताने उल्लुक होते हैं; तब वहां के देव कहते हैं, एक ममृत मात्र हमारा नाटक देखके, फिर इच्छित कीर्जिये. वो सामान्य नाटक करते हैं, उसमें हांके दो हजार वर्ष बीत जाते हैं, हांके सम्बन्धीयों मरक्षप जाते है, और वो भी प्रात सुखमें लूट्य हो जाता हैं.

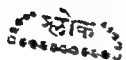
१ चारे देवलोकके उपरके सर्व देव अहमेन्द्र है, अर्थात् सब बगेवरीके है. छोटा बडा कोइ नहीं हैं. इस लिये वहां नाटकचेटक करनेवाला कोइ नहीं है. और वारमें स्वर्गके उपर जैन शुद्धाचारी विपुल ज्ञाना साथ ही जाते हैं. वो पहलेसेही अल्प मोही होने हैं. इस लिये ज्ञान ध्यान सिवायअन्य नफं रुचीही मंद होनी है, वो सावधान होनेही पूर्व सम्पादन किये हुये ज्ञान के ध्यानमें नशगुल हो जाने हैं. जिससेजिनोका उच्छ्र. ट ३३ सागरोपम का आयुष्य परमानंद परम सुखमें

+ हमारे देवलोक के उपर देवी नहीं हैं.

* देवनाथे अवधी ज्ञान जन्मने स्वभावतः होता है



उपशाखा-"शुद्धध्यान"

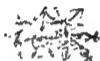


श्लोक गुणेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथाति
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल तन्मयर निर्जरा

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रियाँ और मनको स्वयंश अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तु तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्याते हैं। इसका फल तन्मयर (आगामिक पापका निधन) और निर्जरा (पूर्वोपाजित पापका क्षय) होता है। यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्यायाध सुखकी प्राप्ति होती है। इस लिये मुमुक्षुओंको शुद्धध्यान की विशेष आवश्यकता है। सोही कहता हूँ।

वरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियाँ और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताई, तो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन हैं, उत्तराख्येयन सूत्रमें कहा है—“एवं जीव जीव पंच” अर्थात् एक मनको जीनने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है। और भी कहा है

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥



परम पूज्य श्री कलानंद, ज्योतिष
 सभारक्षक पाठ सादर श्री श्री अर्जुन
 ज्योतिष रचित खान कल्याण प्रकाशन
 नामक ज्योतिष-शास्त्रा सभा.

विनिकृत हो जाता है।
 वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की
 जहां दशवोल्का जोग होता है, ऐसे मनुष्य देवताके
 जन्म ३ और उत्पन्न १५ भव या संख्यात भव कर
 उत्पन्नानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं।



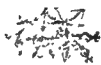
उपशाखा-“शुभध्यान”

श्लोक ३ गुणेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल तन्वर निर्जरौ १

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्वयं अपने आधीन कर. शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाकर अग्वंडित रह ध्यान ध्याते हैं. इसका फल तन्वर (आगमिक पापका निरुद्धन) और निर्जरा (पूर्वोपाजित पापका क्षय) होता है; यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्याघात सुखकी प्राप्ति होती है; इस लिये मुमुक्षुओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. मांही कहता है.

वरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बनाइ. नो इन्द्रियोंकी मनके स्वाधीन है, उत्तराख्येयन सूत्रमें कहा है—“एगं जीय जीय पंच” अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों बढ़ हो जाती है. और भी कहा है,

१३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥
 १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥
 १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥
 १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥ १३१५ ॥



परम पुण्य भी कराने की, करि न मंगलिक
 समस्तपुण्य के पाठ आदिपुण्य भी मंगलिक
 करि नो रचित व्यक्त करणवदस्य परोक्षान
 नामक तृतीय-शाखा अष्टम.

विनिकल हो जाता है.
 वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं की
 जहां दशबोलका जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवताके
 जगन्म है और उच्छिष्ट १५ भव या संख्यात भव कर
 सिद्धयानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.



उपशाखा-“शुभध्यान”

श्लोक ३ गुमेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
 एकाम्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्बर निर्जरौ ३

अर्थ—शुद्ध ध्यानके करने वाले, पंच इन्द्रिय और मनको स्वयंश अपने आर्धान कर, शुद्ध वस्तुकी तर्फ एकाम्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रह ध्यान ध्याते हैं. इसका फल सम्बर (आगामिक पापका निरुधन) और निर्जरौ (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है; यो सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्यावाध सुखकी प्राप्ति होनी हैं; इस लिये मुमुक्षु ओंको शुद्धध्यान की विशेष अवश्यकता है. सोही कहता हैं.

वरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताई, तो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन हैं, उत्तराध्येयन सूत्रमें कहा है—“एवं जीय जीय पंच” अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है. और भी कहा है,

[illegible]

- 2 -

ॐ=‘मगपुत्र मज्झिमसु सत्तमोऽध्यायः’ अ.
 धृति कर्मसु वन्द्यते वाचा औत्तरे वाचा मन्त्रा इ.
 ॐप्रमद्वन्द्व राज सत्पत्नी सत्त. इति इति मन्त्रा इति.

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ब्रह्मते भगवद्वाक्ता

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं की हैं अर्जुन! मनको बश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल है+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसे मन बश में हो सक्ता है-

किसीसे भी पूछ देखो की भाद तुम मनको

बड़ा निर्दयी है. छोटेसे बच्चे पर राजभर डाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बच्चेको पाचकी सता रहा है. यह मुण्तेही राज-कृपि क्रांभानुर हो उस परचक्रोंके साथ मनोमय संग्राम करने लगें (उस वक्त तेने पूछना गुरु किया था) अनेक धैर्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र तेनेक लिये शिरो हाथ डाला के (उस वक्त सातपी नरक के दर्शन भेजे किये थे. हँद नुड मस्तक पाया! उनी नक्त चौक गये भान अ.चा क भंर. मेने साधू होके यह क्या जुलम किया? यों पश्चाताप करने लगे. उन वक्त मं चित्त रूप के दलिये सपने लगे) त्यो त्यो उच चढ़ता गय और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे धन धातिक कर्म नष्ट हो गये नर वैबल ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगई (शुद्ध ध्यान में इन्को प्रवृत्तता है यह गुण भगिनी राजा बड़े खुशहो गये भगवन्तको और उन राजकृपि वर्गों साधुओंको नमस्तार कर निजम्य न गये

+ अतिचंचल मतिमुक्ता नृदुलभ देववन्द्या नित - एतच्च यथे
अर्थात्—यहमन् अतीहोचंचल होके अतानुत्प है इन लिये इनकी
गतीको गचना मुशकिल है

[illegible]

— १५ —

ॐ="ममपुत्र मनुज्यामि काला वन्द्य मन्त्रिणा" अ-
 धीन कर्मसे वन्दन पाता और उचित पाता मन्त्री है.
 ॐप्रमद्वय राज मन्त्रिका मन्त्र. इस लिये मन्त्री की.

असंशयं नहावाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ब्रह्मते भगवद्गीता

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं की हैं अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल है+ परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसे मन वश में हो सक्ता है-

किसीसे भी पूछ देखो की भाइ तुम मनको

बड़ा निर्दयी है. छोटेसे बड़े राजभर ढाल आप साधू बन गया और बेचारे उस बड़ेको पाचकी सता रहा है. यह मुण्तेह राज-कृपि क्रोधातुर हो उस पाचकीके साथ मनःपय संग्राम करने लगे. (उस वक्त तेने पूछना मुरु किया था) अनेक धैर्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र डेनेक लिये शिरसे हाथ ढाला के. (उस वक्त सातवीं नकी के दलीय भेजे किये थे.) हंड नुड मस्तक पा-या! उगी नक्त चौक गये भान अ.पा के अंर? मने साधू हाँके यह क्या जुलम किया? यों पश्चाताप करने लगे. (उस वक्त सं-चित्त कमे के दलिये झपने लगे) त्यो त्यो उच चढ़ता गये और शुद्ध विचारमें एकाग्र होनेसे धन घातिकर्म्म नष्ट हो गये तब कैवल्य ज्ञान दर्शनकी प्राप्ती होगई (शुद्ध ध्यान में इतनी प्रवृत्तता है.) यह मुण् अजित राजा बड़े खुदहो गये भगवन्तको और उन राजकृ-पि बगैर साधुवोको नमस्कार कर निजस्थान गये.

†अतिचंचल मतिमुष्ण मुर्दुलभ वेगवन्तया चेत—हेमचन्द्राचार्य
अर्थात्—यहमन् अतीन्द्रोचंचल होके अतःमुष्ण है इन लिये इनकी
गतीको रोक्कना मुशकिल है

Local and State Milk Sales:

1941-1942

1945 BEL 2422 22 4253

[illegible]

U.S. DEPARTMENT OF COMMERCE

25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1041 1042 1043 1044 1045 1046 1047 1048 1049 1050 1051 1052 1053

ALL INFORMATION CONTAINED HEREIN IS UNCLASSIFIED

(1110b) 1110b 1110b 1110b 1110b 1110b 1110b

THE

[illegible]

“**በዚህ ሁኔታ ላይ ምን ዓይነት ስራ ይኖርብኛል?**”

110111111 6 2017 111111 11111 11111 11111

[illegible]

2 1111 112 112

THESE THINGS ARE NOT TO BE TAKEN TOO SERIOUSLY

此種情形，在生理學上，係屬正常現象。

01:11:01:15 12:11:01:15 12:11:01:15 12:11:01:15 12:11:01:15

[illegible]

ከፍተኛ ፍጥነት ላይ የሚገኝ ሲሆን ለጥንቃቄ ማስፈራራት ይገባል።

1944-1945

संज्ञा-विशेषः

• **உயிர்ப்பிழை**

का सरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से बना, नरक निवासी जीवोंका सरीर; और शुभ पुद्गलोंसे बनाहुया, देव लोक निवासी जीवोंका सरीर, उसे वाहिर आत्मा कहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बैठे हैं, और अपने सरीर को हायलगा कहते हैं. मैं-गोरा हूं. कालाहू, लम्बाहू, छोटा हूं, जाड़ाहूं पतलाहूं-मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रस्मे मेरी आत्माका विनाश होवे, और वो इन्द्रियोंके शब्दादी विषयों के पोषण में मजा मानते हैं, मैं स्त्री हूं-पुरुष हूं, नपुंसक हूं इत्यादी विचारसें पस्वर भोगमें आनंद मानते हैं, हा हा करते हैं. मतलबकीजो सरीरको आत्मा मानें, सरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें, सरीर की पुष्टाईसे हर्ष, और कष्टासे दुःख मानते हैं; वेहीवाहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना० शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव को मिटाने देहा ध्यात छोड़ने, प्रणामोकी निशुद्धी करने, विचार

* श्लोक-देहात्म बुद्धिर्जपाप, नतदगौवध कोटीभीः आत्मा
अदुष्टिर्ज, पुण्य नभृतो ननविष्यति

अर्थ- सरीरकीजो जो आत्मा मानते हैं इन्हे कोटो कोटो पापों के बंध करनेवालेसेभी अधिक पाप लगता है और मैं आत्माही हूं ऐसे विचारवालेको जितना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसे भी अधिक है.

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

का तरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से ब-
ना, नरक निवासी जीवोंका तरीर; और शुभ पुद्गलोंसे
बनाहुया, देव लोक निवासी जीवोंका तरीर, उसे वा-
हिर आत्मा कहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान
वेठे हैं. और अपने तरीर को हाथलगा कहते हैं. मैं-
गोरा हूं. कालाहू, लम्बाहू, छोटा हूं, जाड़ाहू पतलाहू-
मेरा छेदन भेदन होता है मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखे मे-
री आत्माका विनाश होये, और वो इन्द्रियोंके शब्दादी
विषयों के पोषण में मजा मानते हैं, मैं स्त्री हूं. पुरुष
हूं, नपुंसक हूं इत्यादी विचारसे परस्पर भागमें आनंद
मानते हैं. हा हा करते हैं. नतलवकीजो तरीरको आत्मा
मानें, तरीरके सुख दुःखसे अपना सुखदुःख मानें. तरीर
की पुष्टाईसे हर्ष. और कष्टासे दुःख मानते हैं; वेहीवा-
हिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना ७
शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव को निदानें
देहा ध्यान छोड़ने, प्रणामोकी निशुद्धी करने, विचार

* अर्थ - देहात्म्य बुद्धिजंवार, नवर्गावर कोटीभी आत्मा
आधुनिक. दुःख नहते मनस्विनि

अर्थ - जगदीश को आत्मा मानते हैं इन्हे कोशे पाशों
के बंध करके बन्धनभी अविद्ध पाश लगता है और मैं आत्माही हूं
ऐसे विचार सत्यजिना पुनर होता है तो दुःख विरहदहेदुःखमें
भी आनंद

करों की यह सरीर पुद्गल के संयोग से निपजा है, श्री
उत्तराव्ययनजी में फरमाया है की

ॐ गायत्री नो इदं देव्यं निष्ठं अमुच भावा, अमुच मा-
वा विष्य देवैः निश्चो अक्षय्य हेतु निष्य सं
ध्या, संसार है उच वयाति धवं १९

अर्थ=जो मूर्ती पदार्थ है वोही इन्द्रियों से ग्रहण
किये जाते हैं, और जो पदार्थ इन्द्रियों से ग्रहण कि-
या जाते हैं वो जड़ होते हैं और 'चेतन्य' वो अमूर्ती
(अकूपी) हैं, उसको इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सकी है
इसलिये वो अजड़ अविन्यासी निरपह, अनादी देहा
व्यासके कारण से जड़ और चैतन्य सम्बन्ध से एकज
कपटो रहा है, जैसे दूध और घृत, यह जो जड़का श्री
र चैतन्य का सम्बन्ध है, सोही संसार का हेतु है, इस
अनादी सम्बन्ध का निकट करने, श्री आचार्योना स्व
से फरमाया है "अपेगं ठामे, से वडुठामे; जेवडुठामे से
एगं ठामे," अर्थात् जो एक मोह (समत्) को नमो से
बहुती को नमो, अर्थात् सर्व कर्मों को नमो, और
जो बहुत (सर्व) को नमो वोगा सोही एक (समत्) को नमो
वोगा और 'अपेगं विगिचमणे पुढे विगिचड पढे विगिचमा
ण एगं विगिचड' अर्थात् जो एग मोहको खपाते हैं वोसब
(कर्मों) को खपाते हैं; और जोसबको खपाते हैं, वोही

एक को खपाते है-क्षय करते है. इत्यादी विचार से सरीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावें.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा"

२ अंतर आत्मा=अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचारतें हैं, मैं जिसे सम्वोधन करताहूं, सो फक्त लोकीक व्यवहार से करता हूं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक हैं, इसे कौन संवोध सक्ता हैं. आत्मा तो आत्ममय पदार्थ को ही ग्रहण करता है. अन्यको नहीं, अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नताका जिन्हे होवे. अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे. वो अंतर्गत्मी. जैसे अन्धकार में स्थंभका मनुष्य भाप होता है और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता है. तब प्रथमका भ्रम नाश होता है तैसेही भेद विज्ञान अनस्त मूर्त्यके प्रकाश होलेंगे. सरीर और आत्माका यवार्थ भिन्न होता है.

"अंतर आत्म विज्ञानके उद्देश्य."

१ जो जो ज्ञानार्थी है वही आत्म विज्ञान के उद्देश्य है.

का स्थापन है; चेतन्यका नहीं। चेतन्य तो निर्दोष, निर्दोषी है, तो फिर धार्मिक पुरुषोंको देव, निकारी क्यों होता है-

२ जो दुःख, भिन्नता, कष्टोपपन्न होता है, सो ही कर्म स्थापन है, निश्चय ही "अप्रा मित्रमित्रं यः" जो अन्तर्बल निजो तो अप्रा मित्रमित्र है, नहीं तो दुःखका स्थापन तो होताही है, इस विधा-
रसे जो मित्र या अन्तर्ही नहीं बखिर सम प्रणामी
पुनः तब देव न करे-

३ इतने दिन में तो बालकही भट्ट भक्त थे,
हा कदा तो अन्तर्ही भग देव करवाया, न ही व-
त्तव्यता नहीं कि चेतन्य तो अनेक योगादी शक्तिका
धारक है, जो किही प्रकार देव (मूल प्रमाणा)
कर करे।

४ इतने दिन अन्तर्ही सम भक्त पदोंपर,
अप हीही स्वयं और देव तो भक्त पदों पर
उत्तम, फिर देवकी प्रतीति ही रहे, और अन्तर्ही
सम सम साक्षी निश्चय।

५ जो पदोंकाही शक्तिप्राप्ति करे है, जो
नहीं है, फिर चेतन्य और स्थापन में सम निर्दोष ही
न कर करे करे है, जो ही और, जो ही और

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य की, जिन्हें कामोंसे, या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं. उन्हीं कामोंसे ज्ञानी कर्म बन्ध तोड़ निर्मुक्त होते हैं. इस विचार से सबसे ममत्व घटावें.

७ इत्ने दिन संसारमें जो मैं रूपोकी विचित्रता पाया, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (ज्ञान-स्टीमर) सब के सन्मुख से चले जाते द्रुयेभी, अनंत जीवों डूब रहे हैं. इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञानता ही है." अब मैं तो उससे छूटा होतुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वारा ही पहचानी जाती हैं. इसे चशमें या दुर्बान की कुछ जरूरत ही नहीं यो आत्मा देखे.

१० विशेष आश्चर्य तो यह हैं की—जो विषय मय पदार्थ अज्ञानियों को प्रीति उत्पन्न करने वाले होते हैं. वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दुःख दायक लगते हैं; और संयम तपादिक, अज्ञानीयों को अप्रिती दुःख उत्पन्न करने वाले भाष होते हैं. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाष होने हैं.

११ गोदी में है, गोदी में है, ऐसी एकान्त या
 बना कता हुआ यह आत्मा उही पक्को प्राण होता
 है, 'अच्छातो परमत्मा' अर्थात् आत्मा है गोदी पर
 भात्मा है? उही पक्को प्राण होता है, और इससे
 उपाय सहीय कोना।

१२ मेने गोदी उपासना कर्ना छूठ करी, तो
 फिर मुने अन्य उपासनाकी क्या जरूर, क्यों कि ये-
 से परमात्मा है, गोदादी में है।

१३ और विज्ञानी महारामको दूसर तप, और
 महान उपसर्गिणी किचित्ता मात्र दिखत नहीं पर सकि
 है, चला नहीं सक है।

१४ अंत आत्माका ध्यान योगिब्र शक्ति सेप-
 सेही होता है।

१५ जो यम रीति हो, जीव और ब्रह्मा अ-
 लग्न २ समवेगा, गोदी कम बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त
 करेगा, योगादी सब से श्रेष्ठ की आत्मा विदित।

१६ अज्ञान और विषमक से होनेसेही आत्म

तत्त्व प्राप्त होता है।

१७ जिस कायाको जगत्प्राप्ति कर सकी थी,

अज्ञान से होनेसे उहीही कायाको तप सेप्राप्ति में

• अज्ञान ही शक्ति है — अज्ञानही ही शक्ति

गालने लगते हैं.

१८ आत्म ज्ञान विन कोरे तप करनेसे, दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ बाहिर आत्मा वाला, रुप धन, बल सुख, इत्यादी का अहो निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त है.

२० अज्ञानी फक्त बाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी बाह्य अभ्यंतर दोनों उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं,

२१ अध्यात्म ज्ञानी व्यवहार साधने वचन और कायासे अन्यन्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व. दुःख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं वल्के सुखही समजते हैं, जैसे रोगी कटू औषधीके स्वादको न देखता गुणहीका गवेशी होता है.

श्लोक- नैव छिदन्ति शास्त्राणि, नैनं ददतिपावकः

नचैनल्लयं तज्जो, नचोपपत्ति मारुतः ॥१॥

अर्थ- इस आत्माको तिसण शस्त्र छेद शस्त्र नहीं है,

प्रचन्द अग्नी जलासक्तानही है, पागलासक्ता नहीं है

भौगवायु (पवन) वृक्षसक्ता नहीं है; नाफिर भव (डर) किसका

पक्षिका यथायु स्वभाव आपन होता है उससे ज्ञान
है) सा दिखता है, और जब ध्यान होता है, तब
३० जब ज्ञान होता है, तब एक वाक्य (ग-

यम छेड़, लोकोपसे उगावे.

चलता या एक से एक दृष्टिोंकी पूर्ण ज्ञान, लोकोप
विषय विषय विषय विषय से निकलता निकलता है
२१ लोकोप यमसे वचनलाप, वचना आपसे

ही सत्यता दर्शनीयकी कही है,

२८ स्थिर स्वभावज्ञ मोक्ष पाते हैं, स्थिरता

आत्मा नहीं अनन्त मानते हैं.

मज्ञा मानते हैं, और ज्ञानी ज्ञान नष्ट होनेसे अन्तर

२७ अज्ञानी, भद्र बुद्धिके कारणसे पर वस्तिसे

होता है, जैसेही सही और जीव ज्ञानी.

ते या नष्ट होते सही जीव, धर्म, और नष्ट नहीं

२६ जैसे पहले ही वस्ति जीव होते, धर्म, और

संसार सहज छूटता है.

२५ इच्छा है सीधी संसार है, इच्छा स्थानसे

है ही!

२४ परमानन्द आत्मा ही है, गतिर, क्या है

मकी क्रमसतही नहीं मिलती.

२३ ज्ञानीको आत्म साधन विषय अन्य का-

है. वैसाही दिखता है. अर्थात् राग द्वेष नष्ट होजाता है.

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करेकी मै आत्माही हूं. सरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय हो. ने से फिर स्वपनेमेंभी सरीर भावको प्राप्त न हो, जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाती और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धी होती है.

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप बनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है.

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म बने है. जैसे काष्ठसे काष्ठ घसनेसे अग्नी होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वपन आनेसे अपन मरते नहीं है, तैसेही जागृत अवस्थामेंभी, आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है.

३६ ज्ञानी अवतर (वक्त), शक्ती, विभाग, अभ्यास समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभीप्राय, इत्यादी विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृत्तते हैं.

३७ सरीर जैसा बहिर अन्तार है, वैसा अंदरही है.

३८ जहां नमत्त्व नहीं है. वोही मुक्ती मार्ग है.

छोड़ेंगे, वे गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे, वे जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे, वे मरणसे छूटेंगे, जो मरणसे छूटेंगे वे नर्क से छूटेंगे, जो नर्कसे छूटेंगे, वे तिर्यचसे छूटेंगे, जो तिर्यचसे छूटेंगे, वो सर्व दुःखसे छुट परम सुखी होंगे.

४८ आत्म ज्ञान विन. शास्त्र ज्ञान निकम्मा है.

४९ इन्द्रियों के सुखका त्याग कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करते ऐसा नहीं जानना की, इन्द्रियोंके सुख छुटनेसे दुःखी बन जाता है, क्योंकि आत्म ज्ञानकी सिद्धी होते अमृत मयही संपूर्ण बन जाता है. और उस अमृतपान से जालम जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है. जिससे परम सुखी बन जाता है.

५० हे आत्मन् आत्माके साथ निश्चय कर, मैं अतिन्द्रिय हूं, अर्थात् मेरे इन्द्रि नहीं हैं, तथा मैं इन्द्रियोंके गोचर आवू ऐसा नहीं हूं. तथा इन्द्रियोका शब्दादी विषय है. सो आत्मामें नहीं है. इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियातीति हूं. और अनिर्देश हूं. अर्थात् वचन द्वारा मेरा वर्णन नहीं हो सका, इस लिये वचनातीति हूं. ऐसेही मैं अमूर्ती हूं. चैतन्य हूं. आनन्दमय हूं. इत्यादी विचारसे. निज स्वरूपमें निश्चल होवे.

५१ हे आत्मन्, आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

सामान्य होते हैं।

आत्ममात्रा आत्म। अंतर आत्माको प्राप्त होने पर
 मानवी बनता है, देखादी विचार में प्रवृत्त हो अंतर
 ही समय मात्रा में माप होने लगते हैं, तब आत्मा पर-
 लोकात् मुक्त पदार्थ पदार्थ सर्व पदार्थ एक तब एक
 क है, आत्म जोती पदार्थ रूप प्रकटित होनेसे भीन
 और न परल या राह, उसे अलक्षण (इकन) वे स-
 भे परलको हलाने वाला वापसी नहीं वृत्त नका है
 होनेसे प्रकाशका मादा होता है, एवं आत्म प्रतीका
 को राह परल परल के अलक्षण होनेसे तथा अस्त
 प्रकाशका वाप्य परल पालिक वस्तुका और चंद सर्व
 भी प्रकाश नहीं कर सके हैं, अन्य दीपका निक के
 ता है, एवं आत्म आत्म प्रकाश वस्तुको कोटी सर्व
 है, और चन्द्रके प्रकाशसे सर्वका प्रकाश अधिक लग-
 तिम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक
 माससे विजलीका प्रकाश अधिक पड़ता है, इन क-
 तिनसे है, दीपकसे मशालका, मशालसे मासका और
 है, विश्व सामान्य आधीसे दीपकका प्रकाश अधिक
 पदार्थ स्वल्प को गण्ट करने वाला अद्वितीय सर्व
 निम्न अजिब कर की यह आत्मा समस्त लोकके

तृतीय पत्र-“परमात्मा”

३ “परमात्मा” सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादी अष्ट गुण सहित सिद्धी (मुक्ति) स्थानमें संस्थित अ-जरामर अविज्ञार, सिद्ध परमात्मा है, वोही परमात्मा हैं.

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेषता से अप्रमत्त मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत्त पणाही ध्यानकी विशुद्धता, उल्लुप्यता करता है. उसके जोर से महामुनी आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व कर्मको क्षपाके सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्ते है.



द्वितीय शाखा-“उपध्यान” चार.

ॐ श्लोक १३ पिण्डस्थं च पदस्थं च, रूपस्थं रूप वर्जितम्.

चतुर्धा ध्यान मान्नातं, भव्यरा जीव भास्करैः

संस्कृत ४० ११

अर्थ— १ पिण्डस्थ ध्यान. २ पदस्थ ध्यान. ३ रूपस्थ ध्यान. और ४ रूपातीत ध्यान. इन ४ ध्यानके ध्यानसे भव्य जीवों, केवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सूर्य) को प्राप्त कर सक्ते हैं. अब इनका अर्थ—

2012 2013 2014 2015 2016

4. 2. 1944 1944 2. 1944 1944

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

but since the \mathbb{Z}_2 -action is free, \mathbb{Z}_2 -equivariant

உள்ளே இருக்கிறவர்களைப் பற்றித் தகவல் கொடுக்கிறார்கள். அப்போது அந்த இடத்தில் இருக்கிறவர்கள் அந்த இடத்தில் இருக்கிறவர்களைப் பற்றித் தகவல் கொடுக்கிறார்கள்.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

THE UNIVERSITY OF CHICAGO PRESS

$$f_{11}(b_1, b_2, b_3, b_4) = f_{11}(b_1, b_2, b_3, b_4) \quad \text{if } b_1, b_2, b_3, b_4 \in \mathbb{R}$$

የታችኛው ስርዓት ለሁሉም ሰዎች ነው።

આવન કાલે મેં સૂઈને જાગે.

आर २ निर्वाचन विभाग पृष्ठ ११११

1912 1913

በፊት ለፊት የሚገኝ ሲሆን

[illegible]

በዚህ ሁኔታ ላይ ለሚገኙት ሰነዶች ምሳሌዎች ሲቀረጹ ለሚገኙት ሰነዶች ምሳሌዎች ሲቀረጹ

• **የሕግ አፈጻጸም**

19 'മലയാളം ഭാഷാ പരിഷ്കാരം' 2003

1954

ନିମ୍ନଲିଖିତ ପ୍ରାପ୍ତି, ନିମ୍ନଲିଖିତ ନିମ୍ନଲିଖିତ

生計

गाथा ३ पणत्तोस सोलड ठप्पण, चउ दुग मेगंच ज-
वह ज्ञाएह, परमेठी वाचयाणं, अण्णं च
गुरुवए सेण १

दम्ब संसद.

अर्थात्—पैंतीस (३५) सोले (१६) अठ (८)
पांच (५) चार (४) दो (२) एक (१) इस प्रमाणे
अक्षरों के स्मरण से पंच प्रमैष्टी योंका जप-ध्यान हो
सक्ता हैं. और इस सिवाय अन्यभी तरह, मुन्याधिक
अक्षरोंके साथ प्रमाणसे पंच प्रमैष्टी का ध्यान होता
है. सो गुरु गम्भसे धारण कर जाप करना.

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
ण मो अ रि हं ता णं, ण मो सि द्धा णं, ण मो
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
आ य रि वा णं, ण मो उ व ज्ञा या णं, ण मो
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
लो ए त व्व ता हू णं,

पोडस (१६) अक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
'अ रि हं त, सि द्ध, आ चा र्य, उ पा ज्ञा य,
१५ १६
सा हू, ॐ

* इसमें पंच प्रमैष्टीके नाम पात्र हैं.

२५ होए और ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धी होनेसे मोक्ष की प्राप्ती होती है; कदास पुण्य की वृद्धी हो जाय तो १२ देवलोक ९ भेयवेक ५ अनुत्तर विमान इत्तमे महारिद्धिक देव होए.

मन्त्र—नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आइ-गराणं, तित्थयराणं, सयं संवुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससिहाणं पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइयाणं, लोग-पज्जायगराणं, अभयदयाणं, चख्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, वोही दयाणं, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वर चाउरंत चक्खदीणं, दीवो ताणं सरण गइ पइट्ठा. अप्पडी हय वर-नाण दंसण धराणं, दियट्ठ उउमाणं, जिणाणं जावयाणं, ति-च्चाणं तार याणं, बुद्धाणं, वोहियाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वन्नुणं, सव्वदरिसिणं, सिव-भयल-मरुव-मणंत-मरुसय म-वावाह, मपुणराविति. सिद्धिगइ नाम द्वेयं ठाणं संपताणं नमो जिणाणं, जिय भयाणं. (यह थय थुइ मंगलं)

यह नवकार चउवीस्तव (लोगस्स) और नमोत्थुणं यह तीन स्मरण तो यहां बताये; और इन सिवाय जितने जिन भाषित सुत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव. तथा मुनीस्तव.

[illegible]

॥३॥

२ प्रवृत्तयाम्=प्रवृत्त=सुखी भू. स्वर्गोद्देशना
अगमा उक्तं भिन्ना का विनयना सो प्रवृत्त

विदीय यत् प्रियवृत्त्यात्

एतद् एव हि चतुर्विधा भवति विभक्ता कर्ता हे

वेदमय आत्मदान ग्राहीत. अयाहिमक, द्वाविंशती तत्
सु भगवत्. इत्यादि आरव्याय पुरिषद्वया रूप दान
कृता सो मय पदस्य यत्न आगताः।
अविमय इक पदस्ययान व्यानेसे जीव परमा

देहाध्यातसे व कर्म संयोग कर हो रहा है. जिससे संसार चक्रवालमें, अनंत परिभ्रमण कर रहा है. इस का मुख्य हेतू यह है की—

जो जो पुद्गल की दिशा, ते निजमाने इंस.
याही भ्रम विभाव ते, बड़े कर्मको बंस.

जो जो जगत्में पुद्गली पदार्थ हैं, उनको अप-
ने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावमें प-
लटा पड़नेसे. अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होनेसे
आपनाही संयोग वियोग समजता हैं, मतलबकी अप-
नी अनंत ज्ञानमय जो चैतन्य अवस्था हैं, उसको कर्मों
के नशेमें छक हो भूलगया भ्रममें पड़गया; और अपने
स्वभाव को छोड़ विभाव में राच— माच रह्या हैं, ति
सीसे कर्मों की बृद्धि होती हैं और भव भ्रमण कर
पड़ता हैं. कहा है—

कर्म संग जीव मूढ़ है पावे नाश रूप
कर्म रूप मलके टले. चैतन्य सिद्ध स्वरूप.

यह तब कर्म की संगती काही स्वभाव
की चैतन्यका क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरूपी
त्मा रूप हैं. इसका भव भ्रमणमें पड़नेका स्वरूप
ही नहीं. जो होय तो सिद्ध भगवंत को भी प
ने. कर्मों संयोगसे मूढ़ हो प

रूपी निर्जीव जड़ पदार्थ हैं, और जीव ज्ञान स्वरूप अरूपी चेतना वंत हैं. इन दोनोंका अनादी सम्बन्ध के सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कार्यारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जन्ममें थोड़े हैं. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बन्ध तोड़, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे.

ॐ गाथा १० जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ते कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता संसारत्यो सिद्धो, सो विस्स सेङ्गइ.

द्रव्य संमद.

‘जीवा’=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म बन्धके वशसे, अशुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

१. त्रिकालमें जीवके चार प्राण होते हैं, १ इन्द्रियोंके अंगों पर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी श्येःपक्ष्मी इन्द्रि प्राण. २ अनेक विषय रूप वस्तुप्राण, उसका अनेक वा हिस्सा. मन ‘बल’ वचन बल, कायावृद्ध, प्राण है. ३ अनेक शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विप्रीत आदी अंत सहित आयुप्राण है. और ४ आसोश्वासादि त्वेद रहित शुद्ध चित प्राण उससे उलठ आसोश्वास प्राण है यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीया है. और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव है.

दिकपुत्री में अनेक प्रकार का रूप धारण करता है और जबकभी रूप भेद हुए देहाव्याप्त शरीरों की निजस्वको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता है.

संसारि जीवों को अनर्था कालसे, शोभावरणि पाती कर्मों का संस्कार होने से, आत्मा की अंशतः मानस्य चैतन्य शक्ती लभ हूँ. इस लिये विभाव रूप हो रहा है. जैसे कीचड़ के संयोगसे पानी की रूप लता नष्ट होती है, वैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रूप हूँ. जब अवस्थिती परिपक्व होती है तब विभाव रूपी सामग्री प्राप्त होती है. तब कर्म संस्कार नष्ट हो कुछ चैतन्यता प्राप्त होती है, उसीद्वारा ही व सत्त्वोत्तरीको प्राप्त हो एक समग्र संस्कार के साथ प्रतीय जानने योग्य लगता है

मिथी भग जीर्ण, भीरु भी निद भूय.
 कर्म प्रकट भग, कर्मप्रकट भूय.
 कर्म प्रकट भग, कर्मप्रकट भूय.
 कर्म प्रकट भग, कर्मप्रकट भूय.

इस लिये यह भी निद स्वीकार है, स्थिति नष्ट हो मिथ प्रकट प्रकट प्रकट है. अन्य नष्ट. नष्ट हो मिथ प्रकट प्रकट प्रकट है. अन्य नष्ट. नष्ट हो मिथ प्रकट प्रकट प्रकट है. अन्य नष्ट.

रूपी निर्जीव जड पदार्थ हैं, और जीव ज्ञान स्वरूप अरूपी चेतना वंत हैं. इन दोनोंका अनादी सम्बन्ध के सबबसेही देहाध्यासके प्रभावसेही भवांतरों में अनेक तरहका कायारूप धारण करता है. ऐसे जानने वाले जक्तमें थोड़ें हैं. जो यह जानेंगे. वोही कर्म सम्बन्ध तोड़, निर्वाण प्राप्त करनेका उपाय करेंगे.

॥ भाषा ॥ जीवो उव ओगम ओ, अमुत्ते कत्ता सदेह परिमाणो. भोत्ता संसारत्यो सिद्धो, सो विस्स सेङ्गइ.

द्रव्य संग्रह.

‘जीवा’=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदी मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधी रहित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे, अनादी कर्म बन्धके बशसे, अशुद्ध जो द्रव्य प्राण, और भाव प्राण उनसे जीता है.

१ त्रिकालमें जीवके चार प्राण होने हैं, १ इन्द्रियोंके अंगों पर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयेपक्षमी इन्द्रि प्राण. २ अनेक विषय रूप वस्तुप्राण. उसका अनेक वा हिस्सा. यन ‘बल’ वचन बल, कायानल, प्राण है. ३ अनेक शुद्ध चैतन्य प्राण उससे विभक्त आदी अंत सहित आयुप्राण है. और ४ आसोश्वासदि लेह गहन शुद्ध चित प्राण उससे उलट आसोश्वास प्राण है यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीवा है. और जीवेगा वो व्यवहार नयसे जीव है.

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हें भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं.७

* पिंडस्थ ध्यानमें संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान ज्योतीका प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं की— शुभध्यानमें कई मुनव, द्रव्यादी शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो, अंतःकरण में विचारे बाहिर श्वास निकल ने की में स्वस्थान छोड़ बाहिर आया, और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे कां, में अन्दर चला. यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थानसे नाभोक्मलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हों. अन्दरको द्रष्टीको खुड़ी कर देखने ऐसा भाषा होगा की में नाभी कमल पेही संस्थित हूं, यो जब अपनी आत्माका मुक्त स्वरूपका भान होवे. तब उस मुक्त स्वरूपकी द्रष्टी खुड़ी कर नाभीके आजु बाजु चारही तर्फ अवलोकन को, यों धैर्य और दृढ़ निधयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्यकार देखाय तो, उसी वक्त दृढ़ निधयसे कल्पना को, की इस अन्यकारका शिघ्र नाश होवे, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका घेरे हृदय में प्रकाश होवे. यों कइजा हुवा मुसम रूपसेही आकाशकी तर्फ (उंचा) अवलोकन को, के उगी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अंतःकरण में दिखने लगेगा. यों हमेशा अन्यास रखनेसे अंतर आत्मा की ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है. और अंतरिक गुप्त वस्तुओं जाणनेमें आने लगती है और अनेक गुप्त शक्तीयाँ प्रगट होती है.

पिंडस्थ ध्यानमें ५ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योती प्रकाश होता है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं. सो ध्यानस्थ

(द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से अस्तित्व रूप हैं, जैसे आत्मा में ज्ञानादी गुण का सदा आस्तित्व होता है. इस लिये ७ स्यात् आस्ति होय. २ और वोही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा से नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित है, इसलिये स्यात् नास्ति होय. ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा से अस्ति रूप हैं. और परकी अपेक्षा से नास्ति रूप हैं. जैसे आत्मा में चेतन्यता की अस्ति और जडता की नास्ति; इस लिये एक ही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनों होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय, क्योंकि जो आस्ति कहें तो नास्तिका और नास्ति कहें तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनों भाव प्रकाश नहीं जाय; केवल ज्ञानी एक समय में वरुक्त दोनों भावों जाणतो शक्ते हैं. परन्तु बाणी द्वारा वाग्वर नहीं शक्ते हैं. तो अन्य की क्या कहना; इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समय में आत्मा में सर्वस्व पर्यायों का सद्भाव आस्तित्व है और पर पर्यायों का सद्भाव नास्तित्व है. और दोनों भाव

* स्याद् वा स्यात् शब्दका अर्थ 'होगा' अर्थान्तर है! देखना होगा ऐसा होता है.

एकही वक कहै नही जाय, अस्तिक है तो नास्तिका
 आभाव आवै, भूया लगे, इसलिये स्वाद आस्ति अब
 कल्प होय ६ और इसही तरह जो नास्ति कहे तो
 अस्तिक आभाव आवै इसलिये स्वाद नास्ति अबक
 होय. ७ आस्ति के कहने से नास्ति का आभाव, ना-
 स्तिक कहने से आस्तिका आभाव, और परम एकही
 काल में आस्ति नास्ति दोनों तरह हैं. परन्तु कहेजाय
 नही क्यों की वाक्या तो कम होती है इसलिये स्वाद
 आस्ति नास्ति अवकल्प होय यह आस्ति नास्ति अ-

श्रिय स्वादे वाद मत से आत्मस्वरूप दर्शाया.

एसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वर्तते अ-
 नेक पीतीसे आत्म स्वरूपके विचारमें जो निमग्न हो
 बुद्धल पिण्ड से आत्ममाकी निवृत्ता लखे, निश्चय आ-
 त्मिक वने.

यह सब पिण्डरूप ध्यानमें विवर्तन करनेका

मत है—प्राणी हरी कुंभक, नटवर-ज्वर, कामाक्षी-कला,
 सती-पती चट्टाई; गी-भूछ, वादक-मात, स्त्री-श्री-पत,
 चकरी-सूय, पृथ्वी-भट्टाई; कीकिल-अन्ध, वेसापर-भ-
 न्न चूय, देसी-दूधी, भय-मालती, वीर, भयवत-साल,
 आपकी-औषधी, अमोल निजाम स्त्री नित्य व्याद.

मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओंमें मन रमण करता है उससे निवार, एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है. आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करता है, जिससे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है. ज्युने कर्म क्षिण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना ही है की, ज्ञानादी अनंत पर्याय का पिण्ड एकमें आत्मा हूं. और वर्णादी अनंत पर्यायका पिण्ड, कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा तरीर है. इस लिये दोनो के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐसा निश्चय होयतो पिण्डस्थ ध्यान. इस ध्यानसे भेद विज्ञान प्राप्त होता है. जिससे आत्म स्वभावमें, अत्यंत स्थिरता भाव युक्त, क्षांत, दांत, आदी गुण स्वभाविक जाग्रत होनेसे, सर्व भयसे निवृत्ती होती है. उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में या प्राणांतिक उपसर्गके प्रसंगमेंभी किंचितहं क्षोभ प्राप्र नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं.



तृतीय पत्र "केपत्ययान"

३ "केपत्ययान" = कीर्ण परमांक गुणम स्थिर
 होना सो केपत्ययान, अर्हत पाईहम कहा है—

ते जाणइ अरिहंत, वंघ गुण पज्जवहिण;
 ते जाणइ निवउणा, माहे खड्ग जाइय लय. ...

अर्हते—जो अर्हत भावतका स्वल्प, इत्य, गुण, पण्य, करके जाणगा, वोही आत्माके स्वल्प
 को जाणगा. और जो आत्माको पदेवाना वोही माहे

कर्मका नाश करेगा.

अर्हत, अरिहंत, और अरुहंत या ३ शब्द हैं.

१ देविचन्द्र नन्दार्थिक के पुत्र्य, व अतिशयावी कन्या

युक्त सो अर्हत. २ कर्म व गुण इत्यर्थ शब्दके नाश

करे उन्हे, अरिहंत कहते हैं, और ३ जन्माकृत, व

योगावी दुःख के शक्तिके नाश करने वालेको अर्हत

कहते हैं.

श्री अर्हत भावत, अनंत-दान-दैन-गौरव,

और अनंत तप, यह अनंत चण्डिय कर युक्त है, स-

मय सत्ताके मध्यम, अर्थात् शब्दके नीचे, मणी रत्नी

जातिव सिद्धिसत्ताके उपर, चार श्रुति अपर, उच, च-

मर, प्रभासंडल की विभूति युक्त दादया (१२) जात

की प्रपदा से प्रवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह, चार २ कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अचूतेंद्र, सकेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और वृषपति जैसे विद्यामें प्रचूर, पड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, बहृत्त्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभूकी दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते हैं. की हा हा ! क्या अतुल्य शक्ती ? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादी गुणानुराग में अनुरक्त हो, हा हा कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं. जैसे धुआतुर भिष्टान भोजनकों और त्रपातुर सितोदक को ग्रहण करता है. तैसे ही श्रोतगग जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यन्त प्रेमातुरता से ग्रहण कर, हृदय को शांत करते हैं; परम वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाम्रता लगाते हैं.

और भी भगवंत की सृच, मनहर, शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभुक्षित. दीर्घ्य - शलशाट करती, सर्वोत्तम अत्यन्त प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होते हैं. और हृदयमें कहते हैं की, हा हा, क्या यह खूब संपदा,

तृतीय पत्र 'रूपस्थायान'

३ "रूपस्थायान" = तृतीया परमाका गुणम स्थिर होना' सी रूपस्थायान, अर्हत पाठम कहा है—

ते जाणहे अरिहेते, वंघ गण पज्जवेहिण;
ते जाणहे निवडण, माहे खल्ल जाइय लय.

अर्थात्—जो अर्हत भावतका स्वल्प, द्रव्य, द्रव्य, गुण, पृथक्, करके जाणना, वोही आत्माके स्वल्प को जाणना. और जो आत्माको पदेचानना वोही माहे

कर्मका नाश करेगा.

अर्हत, अरिहत. और अरुहत या ३ शब्द हैं.

१ देविन्द्र नैरादिक के पुत्र्य, व अतिशयाधी मन्त्री

युक्त सी अर्हत. २ कर्म व राग द्वेषरूप दोषके नाश

करे उन्हे, अरिहत कहते हैं, और ३ जन्मक्ति, व

योगाधी दुःख के अंशके नाश करने वालोको अर्हत

कहते हैं.

औ अर्हत भावत, अत-दान-दान-गानि,

और अतं तप, यह अतं चरित्र कर युक्त है, म-

मय सत्ताके मध्यम, अशोक दुष्टके नीचे, मणी रत्नो

जडित सिद्धिसणके उपर, चार अंगुल अपर, छत्र, म-

भर, मन्मथल को विभूति युक्त दादरा (१२) जात

की प्रपदा से प्रवरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जरवकी तरह, चार २ कोश में, चारही तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अचूतेंद्र, सकेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और वृक्षपति जैसे विद्यामें प्रचूर, पंड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, वक्रत्वकला के धारक, महा प्रवीण प्रभूकी दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते हैं. की हा हा ! क्या अतुल्य शक्ती ? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादी गुणानुराग में अनुरक्त हो, हा हा कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं. जैसे धुयातुर मिष्टान भोजनकों और त्रपातुर सितोदक को ग्रहण करता है. तैसे ही श्रोतगण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर, हृदय को शांत करते है; परम वैराग्य को प्राप्त होते हैं, बाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं.

और भी भगवंत की सूर्च, मनहर, शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभुक्षित. देदिप्य - झलझाट करती, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होते हैं. और हृदयमें कहते हैं की, हा हा, क्या यह स्वरूप संपदा,

और क्या यह अष्टवैराग्यविद्या. निकामी अक्रोधी. आमान्, अमायी, अलोभी, अरागी, अदोषी, निर्दोषा. पी, निर्विकारी महा दयाल, महा मयाल, महद्गुल, म हा रक्षयाल, असंयम सरण, अतमण सरण, भव दुःख धारण, जन्म सुधारण, जक उपारण, अर्चय, अर्चु ल्य शास्त्रीके धारक, विदुःख धारक, अक्षोभ, अनन, नेत्र युक्त, एम निर्वर्त्मक, एम वैद्य, एम गच्छी, एम ज्योती, एम राज, एमदात, एम कांत, एम दांत एम महंत, एम इष्ट, एम मिष्ट, एम वैष्ट, एम श्रेष्ट, एम पंडित, एम मंडित, मिथ्या खंडित, एम उपवासी, अ- रम गुण योगी, एम योगी, महा त्यागी, महा वैरागी, अविष्य, अगाध, महारम्य, अनंत दानलक्ष्मी लाभल लक्ष्मी, भोग लक्ष्मी, उपभोगलक्ष्मी, और वल्लोदलक्ष्मी के धारण हेतु, धार्मिक सम्यक्तर यथा कथात धार्मिक, कुशल दान, कुशल दक्षिण, युक्त अवादेश (१८) दोष रहित, धार्तिस आतिशय, धूर्तिस धाणी गुण स- हित, एम शुकु लेखी, एम सुखियानी, अश्वेत भागी, एम कल्याण रूप, एम दांत रूप, एम पवित्र, वि- चित्र, दांत-मुक्ता, सर्वत्र सर्व दक्षी, मिष्ट, दुष्ट, हिते पी, महाकृपा, निरामय, (निराम) महाचन्द्र, महास- य, महा समर, योगिन्द्र, मुनिन्द्र, देवाधिपति, अचल,

विमल, अकलंक, अवंक, त्रिलोकतात, त्रिलोकमात
 त्रिलोकभ्रात, त्रिलोकइश्वर, त्रिलोकपूज्य, परम प्रता-
 पी, परमात्म, शुद्धात्म, अनन्द कन्द, ध्वन्द निकन्द,
 लोकालोक, प्रकासिक, मिथ्या तिम्र विनाशिक, सत्य
 स्वरूपी, सकल सुखदायी, साक्षाद शैली युक्त, महा देश
 ना फरमाते है की, अहो भव्य ! वूजो २ (चेतो २)
 मोह निद्रा नजो, जागो, जरा ज्ञान द्रष्टी, कर देखो,
 यह महान् पुन्योदयसे, अत्युत्तम मनुष्य जन्मादी स
 मग्री, तुमारे को प्राप्त हुई है, उसका लाभ व्यर्थ मत
 गमावो. ज्ञानादी त्री रत्नोसे भरा हुवा अक्षय खजा-
 ना तुमारे पास है, उसे संभालो, उसीके रक्षक बनो,
 इसे छूटने वाले, मोह, मद, विषय, कपाय, रूप टगारे
 तुमारे. पीछे लगे है, उनके फंदसे बचो, इनके प्रसंगसे
 अनंत भव भ्रमणकी श्रेणियों में, जो जो वित्त सही है.
 उसे यादकर पुनः उस दुःख सागरमें पडनेसे डरो. और
 बचनेका उपाय करनेकी येही वक्त हैं. जो यह हाथसे छुट
 गइ तो पीछी हाथ लगनी महा मुशकिल है. जो इस
 वक्त को व्यर्थ गमा देवोगे तो फिर बहुतही पश्चाता-
 प करोगे. यह सच समजो. और प्राप्त हुये दुर्लभ
 लाभ को मत गमावो. बनी वक्तमें लाभ लेना होय
 सो लेलो. नानो ! नानो !! और विकाल मायाजाल

को लोह, जगतका फंद छोट, चलो हमारे साथ, हो-
 वो हुआ, हम अपना शोश्रव आविष्ट मीश नगर में
 परमानन्द परम सुख मय शोश्रव स्थान है; वहां
 जाते हैं. आओ जो तुमारे को आना होय तो; वहां
 तुमारा घर है, वहां मय पाछे, पुनरावर्तिनही करना पड़
 ता है, अनंत अक्षय अक्षयबाध सुख में, अनंत काळ
 बांही रहना होगा. चलो! चलो! चलो!।। इत्यादी
 अहंत भगवतका परमोक्ति धर्मपदेश श्रवण कर फ.
 रसना कर, भूत काळ में अनंत जीव मोक्ष मय, पुन-
 रान काळ में संख्याते जीव मोक्ष जाते हैं, और भविष्य
 काळ में अनंत जीव मोक्ष जायेंगे, इस लिये है आत्म
 अहो! मेरी व्याप्ति आत्मा। ते महा भाग्योपपत्त शो
 श्रवण भगवान का मार्ग पाया है, उनके पया तप
 गुणकी पदचान हुई है. तो उन्हें जसा होनके लिये
 उनके गुणों में सब लगा, उन्होंने ईकम प्रसादी सत्,
 उन्होंने किये बांही कृत्य पया योग्य कर, उन्होंने स्व

अतिशय परमोक्ति है परमोक्ति और ८ मध्य १०८
 जीव निकलके निष्पन्न कर विस्तार परमोक्ति आने है. अतएव श्री
 गरी नेने कहीयां गरी और इनेही और विस्तार परमोक्ति निक
 ल पाय गये हैं. वे श्री गरी की कति विस्तारके एक गरीरम के
 जीवों में एक भूत श्री गरी (गरी) गरी होना है. एसा पद
 गरीरम विस्तार मय मय विस्तार मय मय विस्तार है.

वन. तन्मय हो लवलीन होजा, जैसे स्वपन अवस्थामें द्रष्ट वस्तुके ध्यानमें लीन हो, उसही रूप आप वन जाता है. अपनी मूल स्थिती भूल जाता है; वो तो मोह दिशा है. परंतु वैसेही ज्ञान दिशामें लव लीन हो अहंत भगवानके गुणोंमें तन्मय वन, के जिसके प्रशादसे तेरी अनंत आत्म शक्ती प्रगटे और तूही अहंत बने.

चतुर्थ पल "रूपातीतध्यान"

४ 'रूपातीत ध्यान'=रूपसे अतीत=रहित (अ रूपी) ऐसे सिद्ध प्रमात्माका ध्यान-चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान.

गाथा ४३१७२५३५ जरिस्त सिद्ध सहाबो, तारी सहाबो सब्व जीवाणं तग्हा सिद्धंत रुइ, कायव्वा, भव्व जीवेही.

सिद्ध पादुद.

अर्थात्—जैसा सिद्ध भगवंतकी आत्माका त्व रूप हैं, वैसेही सब जीवोंकी आत्माका स्वरूप है, इस लिये भव्य जीवोंको सिद्ध त्वरूप में रुची करना अर्थात् सिद्ध स्वरूपका ध्यान करना.

गाथा ४३२०२४०२४० जं संठाणं तुइहं, भवं चयं तरस्त चारिम समयंमी आसिय पए संघणं, तं संठाण तहिं तरस्त. ३

[illegible]

Life

እኔ ከፍተኛ እና የፍጥነት ጥንካሬ ያለው ነው። እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው።
እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው። እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው።
እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው። እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው።
እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው። እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው።
እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው። እኔም እና ከፍተኛ ጥንካሬ ያለው ነው።

आनी. ७३.

अथानि-मनुष्य जन्मके चम (छले) समयमें
 जिस आकारसे पहले सरीर रहता है; उनके आयुष्य
 पूर्ण होय बाद जिसके निजाम प्रवेश जिस आकारसे
 उस सरीर के लम्बाई पूर्ण होतीयांस होत (तीसरा
 भाग कम, सिद्ध क्षेत्र लोकके अयमगाम वी प्रवेश
 जाके जमते है. उसेही सिद्ध भागकी अयमगना कहै

上海立信会计

તિહેવારે નસીબા, જુ વારિમ મનૂ દેવેજ્ઞ મયભા,
તત્ત્વ તો આગ ફોળાં, સિદ્ધિભી માટેના મણિયા. ૪

अब वो जीव द्रव्य कैसा हैं, सो सूत्रसे कहे हैं.
“मति तत्पण गहिता, ओए अप्पति हाणस्स खेयन्ने”

अर्थात्—सिद्ध भगवंत के रूपका, या गुणका
वर्णन करने ‘सब सरा नियटंता’ अर्थात् अव्यक्त-
व्य हैं. कोईभी शब्दमे वर्णन करनेकी शक्ती नहीं है,

वो बता सकता नहीं है. तैसेही सिद्ध भगवंतको भी “ज्ञानं स्वरूप
ममलं प्रवदान्ति संतः” अर्थात् संतः पुरुष निर्मल ज्ञानरूप बताते
हैं. (१) और जो रूपी पदार्थ का द्रष्टांत दें तो मट्टीकी मुद्रामें मे-
णका पट्टणा’ पीतलादी धातुको रस डाल भूषणादी बनाते हैं
वो भूषण उसमेंसे निकाले पछि मृदुमें मेण (मौम) का भाप मात्र
आकार रहता है. तैसेही सिद्ध भगवंतका अरूपी आकारकी अब
धेणा हैं. (२) कांचमें दिखता हुआ प्रतिबिंब फूट भाप मात्र है.
तैसे सिद्धकी अवधेणा. (३) जोती स्वरूपी कहे जाते हैं. उसका
मवलव यह है की जैसे केटडीमें एक दीवा किया उसका प्रका-
श उसमें समाजाता है, और बहुत दीबे कीये तोभी उनका प्रका-
श उसही केटडीमें समाजाता है. परन्तु वो प्रकाश क्षेत्र रोकता
नहीं है. (जमीन जाड़ा होती नहीं है) ऐसेही अनंत सिद्ध मोक्ष
में हैं. और अनंतही हो गये तोभी बिलकूल जागा रोकती नहीं
है. एक दीबेका प्रकाश जितने स्थलमें फैला है. वोही उसकी अव-
धेणा. तैसे सिद्ध की अवधेणा जानना. (४) सिद्ध भगवंत छद्मस्व
की अपेक्षासे अरूपी हैं. (दिखते नहीं हैं) परन्तु केवल ज्ञानों तो
देख सकते हैं. जो केवली देखते हैं. वोही जीव द्रव्यके आत्म प्र-
देश है, और उसकी अवधेणा समजना. इत्यादी द्रष्टांतसे सिद्ध
की अवधेणा समजना चारीये.

क्यों कि वहाँ तक कल्पना विचारना दोड़ती नहीं।
 की है। वह २ मन्दबोला सर मुक्त दृष्टान्त सब द्या-
 खों के पार गामियों की भी जुड़ी होल तक वहाँ न
 पहुँची, तो अब क्या पहुँची, जो विशेष ही दोड़
 करी तो इला कह शकते, की वहाँ एकला जीव क-
 स कलक व सब संग रहित, तब सब विदास, अप-
 ने ही प्रवेश युक्त विराज मान है बोसधुवां बोल सय
 ही है.

और भी जो जीव कैसे है सो सब से कहत है
 सब-० व दूहि, व दस, व बडे, व बसे, व चउस,
 व परिसण्डले, व किण्डे, व लाले, व लोहोण्डे, व हिले.
 व सुकिण्डे, व सुगोहोण्डे, व दुगोहोण्डे, व तिले, व कड
 व, व कसाले, व अंजिले, व महेरे, व ककलहे, व मज्ज,
 व गिरु, व लहिरु, व लिरु, व उण्डे, व लिले, व ल-
 कले, व काउ, व रुडे, व मी, व डेरिय, व पुसिले, व
 अण्डे, पणिले सणले उण्ण व विजालि, अरणीसवा अ.

अथ स पणालि

अथ स पणालि

अथ स पणालि-सिद्ध अथ स पणालि विषय रहे ह्ये जीव
 नही लन्, नही टिगण है, नही लड वसे गोल है,
 नही लोचण, नही चोचण, नही नही वसे मण्डल-
 कार, नही काले, नही हरे, नही लाल, नही पाले,

नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कसयले, नहीं खट्टे, नहीं मीठे, नहीं कठिण, नहीं नरम (कोमल) नहीं भारी (वजनदार) नहीं हलके, नहीं ठण्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निगन्ध (चीकणे) नहीं छुरके इत्यादी किसी भी प्रकार के नहीं हैं। अब उनको जन्मनाभी नहीं, मरना भी नहीं, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरुष, नहीं है नपुशक, परन्तु सर्व पदार्थके जाण पिरिज्ञाता = संपूर्ण पणे जाणते हुये,

सदा स्थिरभूत त्रिमाराजनहे, उनको ओपमा दी जाय। ऐसा पदार्थ एकही जक्त में नहीं है, क्योंकि वो तो अरूपी है, और ओपमा देने लायक व वचनसे कहे जावे वो पदार्थ रूपी है, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छाजती नहीं है, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेषण देने लायक है ही नहीं; इस लिये ही कहा जाता के की, उनको जान ने के लिये, बताने के लिये, कोईभी शब्द शक्तीवन्त नहीं हैं। फक्त व्यक्ती रूपही गुणोच्चार न कर सके हैं।

गाथा—जहा सब्ब काम गुणिचं, पुरितो भोचुण भोयण कोइ

तण्हा जुहा विमुक्को, अच्छेज जहा अभियोत्तत्ति १८

इय सत्त्व कालाविसे, आउले निज्याण भुवगाया सिखा
 सासय मव्या वाहेय, वट्टइ सुखी सुहं पत्ती. १९.

अथ मंत्रः

अर्थात् — यथा इदं त्रयोदश कौड पुण्यवन्त, श्रीमंत

सर्व प्रकार के सुख की समझी युक्त वो इच्छित — य
 गणी पादो भवण-कर, नाटकादो अवलोकन-कर, पु
 ण्यादो भूषण-कर, यह रस भोजन इच्छित भोगवक्त, श्री
 र इच्छित सर्व सुखों का भोगोपायोग ले कर भव-हो,
 निश्चित सुख सेवा में अनन्द के साथ बैठ है, सर्व
 कामना रहित संतुष्ट हुआ है, किसी भी तरह की नि-
 से इच्छा न रही है. तेसेही सिद्ध भावन्त सिद्ध रथा-

न में सर्व काम भोग से भव, निरिच्छित हो; अर्थात्
 अनोपम, अमिश्र, योग्यत, अत्यावाप्त, निरामय, अप-
 र, सदा सुख से भव हिये की माहिक, सदा विराज
 मान है. उनको कदापी कोइभी काल में, किसी भी
 प्रकार की, क्रियत मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं
 है, ऐसे पमानन्द परमसुख में अन्त काल संस्थित र-

हते है.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्माके गुण, रत्न मनन

नियामन, एकाग्रतासे उत्पत्तीन हो भान करे, उस व
 क अन्य कल्पना को क्रियत मात्र अपने हृदय में

प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर द्रष्ट करे, उधर वोही वो द्रष्ट गत होए. ऐसा लव लीन हुवा जीव द्रढाभ्यास से, उसही स्वरूप को, ज्ञान द्रष्टी कर देखने लगे, तब सिद्ध स्वरूपकी और अपने श्वरूप की तुल्यता करे, की इनमे और मेरेमें क्याफरक हैं. कुछ नहीं, जो रूप यह है वोही यह है. मेरा निजश्वरूप ही परमात्मा जैसा है. सर्वज्ञ सर्व शक्ती वान निष्कलङ्क, निराबाध चैतन्य मात्र सिद्ध बुद्ध प्रमात्मा में ही हूं. ऐसे भेद रहित बुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, आपको आप सरीर रहित या कर्म कलंक रहित शुद्ध चित्त, अनन्द मय जानने लगे. ऐकांतताको प्राप्त होवे फिर द्वितिय पन बिलकुल रहे नहीं. उस समय ध्याता और ध्येय. का एकही रूप बन जाता है.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागादी दोषोंका क्षय हो गया है, जानने योग्य सर्व पदार्थको यथा तथ्य जानने लगे. सर्व प्रपंचोसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये. सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मामें भाप होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रूपातीत ध्यानके ध्याता कहीए.

इस ध्यानके प्रभावसे, अनादी जकड़ बन्ध जो कर्म का बन्ध है, उसे क्षिण मात्रमे छेद, भेद, तरिक्ष-

माल देवे त्यों ज्ञान देवे, ९ † पदानुसारणी=एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० सभिन्न भुत=सुक्ष्म शब्दभी सुणले, तथा एक वक्तमें अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रसको स्वादले, १२= १६† श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, इन ५ ही इन्द्री की तिन शक्ती होवे, १७ प्रत्येक बुद्ध=उप-देशविन अन्य संयोगसे वैराग्य आवे, १८ वादीत्व श-क्ती इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करें.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद-१ जलचर=पाणी पें चले पर डुबे नहीं, २ अग्नी चरण=अग्नीपे चले पर जले नहीं, ३-६ पुष्पचरक=फुलपे, पतचरण=पत्तेपे, बीजचरण=बीजपे, और तंतु चरण=मकड़ीके जालेके तंतूपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीके तरह उडे, ८ जंघा चरण=जंघाके हाथ लगानेसे और ९ विद्याचर=विद्याके प्रभावसे क्षिण नाशमे अ.

† पदानु सारणी के तीन भेद-प्रती सारी पहिले पद मिटा-वे, अनुसारी-छेके पद मिटावे, उभयासारी-विचके पद मिटा ग्रन्थ पूर्ण करे

१२ जोजन वरदा शब्द सुणले.

१३ इन्द्रादी विषयमें ९ जोजनके अंतरसेही पेटान ले.

2. The following is a list of the names of the persons who have been appointed to the various committees of the Board of Directors of the City of New York, for the year 1900:

[illegible]

३, 'वक्तु मूर्च्छिके' ११ भेद-१ अधिमा-सुप्त
म सरीर यगते. २ महिमा-वक्तुवर्तीकी मूर्च्छि यगते. ३
अधिमा-इया के विसा इच्छका सरीर करे, ४ महिमा-
यत्ने विसा मही सरीर करे, ५ मही-पुण्यवीर्य रे मरुत
काका स्वयं करे. ६ याकाव्य-पणीय पुण्यवीकी तरे
यत्ने, और पणी म इव. वीसे पुण्यवीर्य इव, ७ इन्द्राय
वीर्यकरकी तरे समवसरणीवी मूर्च्छि यगते, ८ यदा
स-सपकी व्यास लो, ९ अगतिपात-प्राप्तके अन्तर
स भूतके निवृत्त यग. १० अन्तर्धान=अदृश (गुह्य)
ही यग, और ११ कामव्य-इच्छित यग यगते.

हो जाय, परंतु सरीरसे सुगन्ध आवे. कान्ती वडे. ३ 'तत्तत्तेव' ज्यों तपे लोहेपे पडा हुवा पाणी सुख जाय तैसे तिव्रक्षूया लगने से थोडा अहार करे जिससे लघु नीत वडीनीत की बाधा न होवे, और देवतासे भी ज्यादा सरीरमें बल आवे. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्ति होवे. ४ 'महातप' मास क्षमण जावत् छमासी तप करे, क्षिणंतर रहित भुतज्ञान में तल्लीन बने रहे, जिससे परम भुत, अवधी, मन पर्यंत ज्ञानकी प्राप्ति होवे; ५ 'घोरतप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे, ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (वीकट) अभिग्रह धारण करे, सरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचरे, ६ घोर पराक्रम, स्वशक्ती तप संपन्नके अतीशयसे जगत् त्रयको भयभ्रंत कर सके, समुद्र शोक शके और पृथ्वी उलटी कर शकें इत्यादी महाशक्तीवंत होवे. ७ 'घोरगुण ब्रम्हचारी' नवबाड विशुद्ध नव कोटी युक्त शुद्ध शील वृत्तादीके प्रसाद से त्रण जगत्के महारोगको उपशमा के शांती वरता सके, सर्व भये निवार सके, व्यंस्तरभय, जंगम, स्थावर विष, बगैरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मार मारी दुर्भिक्षा दी उपद्रव न होवे. इत्यादी महा प्रभाव वंत होवे.

५. 'वृत्तः शब्द' के ३ भेद १ मान वृत्तिये-मान
 वृत्तः शब्द-विकल्प पदोन्नाम गृहित मान है, २ पदान
 वृत्तिये-अन्तः मङ्गलमं द्वाद्वाली का अभ्यास करे,
 वृत्तः काष्ठ पठते भी आम पदा न होवे, ३ 'काया व'
 कीये-मान वृत्त पर्वत कायुत्सर्ग करे तो भी धके नही
 पड़े मङ्गलाकारित.

६ 'ओप्य शब्द' के ८ भेद १ आमासही-य-
 रण रण पण(वृत्त) धूलके स्पष्ट है, २ जलोसही-ये
 पम धूक आधी स्पष्ट है, ३ जलोसही-सीरके पसी
 ने के स्पष्ट है, ४ मलोसही-कण चर्च नाशीकाधी
 सीरके मूलके स्पष्ट है ५ विप्रासही-पिष्ट मूलके स्प
 ष्ट है और ६ मलोसही-सर्व स्पष्ट है (इन ६ का स्प
 ष्टः ऐनीके हानसे उत्पत्ता) सर्व योग नाश होवे, ७ अ
 धीविप-विप अमृत रूप प्रमाण नया वचन अथवा मा-
 नसे सर्व विप विरला जाय. ८ 'उद्दी विप'-नया उद्दी
 मायसे विप अमृत मय हो जाय और कीय ७२ वृत्त
 तो अमृत विपमय होजाय, मङ्गल विपानी निर्विकारी व
 से ऐसे मङ्गल शकीवत.

७ 'स शब्द' के ६ भेद-१ अस्सी विप-
 कीय वत पवन मान से और २ उद्दी विप-उद्दी
 मान से उद्दी के माण नाश करदके ३ योगसही नि

रस अहार हस्त स्पर्श से क्षीर जैसा होजाय, तथा वचन मंत्र से निर्वल को पुष्ट बनादे. ४ मधुरास-वी-कट्ट अहार स्पर्श से मधूर होजाय, तथा वचन मधुर मय (सेहत) जैसे प्रगमे, (सप्पिरासवी) लुब्धा अहार स्पर्श से प्रतसे संस्कारा जैसा होजाय, तथा वचन से रोग गलाशके, ६ अमइरासवी-विष स्पर्श से अम्रत जैसा होजाय तथा वचन से जेहर उ-तार शके.

८ 'क्षेत्र ऋद्धि' के २ भेद=१ अखीण माणसी अल्प अहार स्पर्श से अखूट हो जाय. चक्रवृतीकी शैन्यभी जीन जाय तो खुटे नहीं, २ अखीण महालय. स्पर्श मात्रसे भोजन बढ पात्र सर्व अखूट होय.

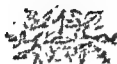
ये सर्व $१८+२+११+७+३+८+६+२=६७$ भेद लब्धी-ऋद्धिके हुये.

महातप और शुद्ध-ध्यानके प्रभावे, ऐसी २ लब्धीयों आत्म शक्तियों, मुनीराजके प्रगट होती है, परंतु वे कदापी इनके फलकी इच्छा नहीं करते हैं, तो फोडना-करना तो कहा रहा!

श्लोक-अहो अनन्त वीर्यो अय, मात्मा विश्वप्रकाशकः

तैलोज्यं चलायत्वे, ध्यान शक्ति प्रभावतः

अर्थ-अहो! तन्पूर्ण विश्व (जगत्) को प्रका-



सुप्रसन्न,

NAME: _____

✓ 13th Sept 1973

12-12 15-15 22-12 15

ਪ੍ਰੋਫ਼ ਪੁਨੀਤ ਕੁਮਾਰ ਸਿੰਘ ਭੁੱਲਾਨੀ

ᐱᐱᐱᐱ ᐱᐱᐱᐱ ᐱᐱᐱᐱ ᐱᐱ ᐱᐱ

1. 建立和完善各项规章制度

पितृ कर्तव्यं यादृच्छी आसीत् । तेषां शक्तिशाली कौशलं पराजितं
 कर शक्तिं ? ई अंश अन्तर शक्तिं है. जो ई सदैव
 मनसि स्थितं तन्मय है। कदापी अगता प्राप्ता अग
 गति, तो एक विराट्प्राप्ति अथवा मय अर्थ दीनर्तु लो-
 कतो कृता शक्ति है ।। यह तो सर्वज्ञा करे, और आ
 ये प्राप्ति अंश अन्तर शक्ति प्रतीका कर्तव्य-

चतुर्थशाखा-“शुक्लध्यान.”



“सुके क्षाणे चउविहे चउ प्पडोयारे पत्तंते
तंज्जहा

अर्थात्= सुक्ल ध्यान के चार पाये, चार लक्ष
ण, चार आलंबन, और चार अनुप्रेक्षा योः६ भेद भ
गवंतने फरमाये हैं, वो जैसे है वैसे कहते हैं.

धर्म ध्यान की योग्यता से, शुद्ध ध्यान
प्याते, मुनी, अधिक गुणोंको प्राप्त होते हैं. अत्यंत
शुद्धता को प्राप्त होते हैं; वह धीर, वीर मुनीस्वर
शुद्ध ध्यान को प्याते हैं.

शुक्ल ध्यानीके गुण.

शुद्ध ध्यानकी योग्यता जिनको प्राप्त होती है.
उनकी आत्मामें स्वभाविकता से सद्गुणोंका उद्भव हो
ता है वह गुण 'सागारधर्मानृत' ग्रन्थकी टीकाने इत
तन्हे कहा है-

गर का सकल्प विकल्प (चलदिचल) पणा नहीं रहा,
 अकांत न्याय मार्गके तर्क लग गया. सुरांगना और
 सुरेन्द्रकी नृदि भी उनके चित्तको क्षोभ उपजा नहीं
 सकती है, ध्यान से चला नहीं सकती है. तथा इस
 लोकमें पूजा श्लाघा, और परलोकमें देवादिककी श्र-
 द्धि की वांछा न होवे, मेरु समान प्रणाम की धारा
 स्थिरी भूत हुई है. ३ योगातीत-अर्थात् मन वचन
 और कायाके योग्यका निरुधन किया, मनको आत्म
 ज्ञानमें रमा वचनविन मतलब न उचारे और काया
 का हलन चलन विन प्रयोगन नहीं होवे, 'ठाण ठिय'
 एक त्याग स्थिरी भूत करे, ४ कपायातीत-क्रोधादी
 कपाय की लाय (अन्न) को बुजाके शांत शीतल व-
 न गये हैं. अपमानादी मरणांतरु जैसे घोर उपसर्ग
 होने सेभी कदापि कल्पित होना तो दूर रहा, परन्तु
 मनमेंभी दुभाव न लावे. ५० क्रियातीत-अर्थात् का-

*११ तो क्रिया-१ मलबसे कर्म करोसो अर्था दंड क्रिया.
 २ विना मतलब करे सो अनर्था दंड क्रिया. ३ जाँच पात करे
 सो हिंसा दंड. ४ अचित्त कर्म दो जाय सो अकृत्याव दंड. ५
 भ्रमसे पात करे सो द्रष्टा विपरिधासीपा दंड. ६ झूठ बोलें सो मोप-
 वती दंड. ७ चोरी करे सो अदत्त दान दंड. ८ अशुभ ध्यान
 ध्यावे सो अप्यात्निद ९ अनोमान करे सो मानवति. १० मि-
 त्ते द्वेष करे सो मित्र दोषवति. ११ कपट करे सो मायावति

करते हैं

अधुना-१ प्रथम-विनय, २ एक-विनय, ३ सुख
 क्रिया, अग्रविनय, और ४ व्युत्पन्न क्रिया निवृत्ति, यह
 श्रुति-विनय ४ पावे, जैसे मकानकी मजदूरी के लिये
 पावे (नीम) की मजदूरी-पञ्चाङ्ग करते हैं, जैसे ही श्रुति
 व्याप्ति व्यापकी स्थिति रूप या प्रकाश विचार
 सुख क्रिया अपविद्या, सुखिजन क्रिया अपविद्या
 सप्त-पुष्टि दीपक दीपति, पाव दीपके अदीपति,

प्रथम गति शीघ्र-“श्रुति-विनय-पावः”

एत आगे चार विभाग करते करते हैं
 वे हैं, जैसे गुणगाने श्रुति व्याप्ति है, जिसका पर-
 ल वृत्ति, इन गुणों वृत्ति वृत्ति, वे श्रुति व्याप्ति कर सक
 अवस्थादी, ८ शीघ्र विकल्पता रहित, ९ निरूप-अज्ञे-
 ७ श्रुति चरित्र, विनय क्रिया करने वाले, विनय
 सर्वथा वन्द्य होने से निरूप-वन्द्य है, ६ वन्द्य वन्द्य
 योग से सर्व वृत्ति वन्द्य से वाङ्मन्यता क्रिया आनी
 श्रुति-विनय २५ क्रिया से वन्द्य निवृत्ति है, मनी

प्रथम पत्र-“पृथक्त्व वितर्क”

१पृथक्त्व वितर्क ॐ=जीवाजीव की पर्याय का प्रथम (अलग) विचार करे, आर्थात् श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीति) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते, अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते, जीव की पर्यायमें प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादी रीतसे भिन्न २ करके चिंतन करे तथा आत्मा द्रव्यसे धर्मास्ती का पृथक् पणा करे, द्रव्य गुण पर्यायका भी पृथक् पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक् पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक् पणा चिंतवे, और आत्मा के अंतस्थ प्रवेशों में से एक प्रवेश को भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! यौगिक रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उसमें प्रवेश कर, वितर्क अनेक प्रकार के तर्क वितर्क

* पृथक्-विविध प्रकार, वितर्क-भुन भुने विचार. अर्थात्-व्यंजन संकल्प जो अभिज्ञान, इससे हुआ २ अर्थ सक्रिय धर्म बोध और बोधन. ३ योग संकल्प बनादा विद्वान्. ४ संकल्प इस पापमें होते हैं.

करते है।

व्यापी व्यापकी स्थिति रूप चार प्रकारके विचार
पाप (नीम) की मजबूती-पडाई करते है। तेसेही शक्ति
शक्तिव्यापक ४ पाप, जैसे मकानकी मजबूतीके लिये
क्रिया, अप्रतिपाति, और श्रुत्युक्त क्रिया निर्देशी, यह
अधु-१ प्रयत्न-वितर्क, २ एकत्व-वितर्क, ३ सुख

सुख क्रिया अप्रतिपाति, समिचितन क्रिया अप्रतिपाति
सुख-पुष्ट वीर्यकृष व्यापी, पंगव वीर्यकृष व्यापी,

प्रथम प्राप्ति योगी-“शिवस्त्यानस्य पापः”

पान आगे चार विभाग करके कहते है।

१ है, जैसे गुणवाले शक्ति व्यापक है। जिसका वर-
ल है। इन गुणी युक्त होने, वे शक्ति व्यापक कर सक
अवस्थापी, ८ शीघ्र विकलता रहित, ९ निष्कप-अज्ञे-
१० शक्ति चरित्र, जिनोक्त क्रिया करने वाले, विविध
सर्वथा बन्द होनेसे निष्कप बने है। ४ द्रव सहेन,
योगसे सर्व वृत्ति बनेन से वाष्पान्यातर क्रिया आनी
शिवार्थिक २५ क्रियासे उनकी निर्जली हुई है। मनी

प्रथम पत्र-“पृथक्त्व वितर्क”

१ पृथक्त्व वितर्क ॐ=जीवाजीव की पर्याय का प्रथम (अलग) विचार करे। अर्थात् श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीति) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते, अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते, जीव की पर्यायमें प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादी रीतसे भिन्न २ करके चिंतन करे त. था आत्मा द्रव्यसे धर्मास्ती का पृथक् पणा करे, द्रव्य गुण पर्यायका भी पृथक् पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक् पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक् पणा चिंतवे, और आत्मा के अस्तित्व प्रदेशों में से एक प्रदेश को भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारें! योंविविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उसमें प्रवेश कर, वितर्क अनेक प्रकार के तर्क वितर्क

* पृथक्-विविध प्रकार, वितर्क-धुन इति विचार. अर्थात्-व्यंजन संक्रम जो अभिधान, उक्तने हुका २ अर्थ एकत्र कोष और कोषमन्त्र. ३ योग संक्रम पञ्चदश विद्वत्. तत्त्व संक्रम इस पापमें होते हैं.

उपजाते, और उसका अपनही मनसे समझान करके
 जाय ऐसे उससे लड़िन वन, फिर अपनी आत्मा की
 लक्ष लक्ष पहँचावे, की यह प्रत्यक्ष विवर्तना पुनः वि
 पद, और अन्तर रही आत्मा की चेतनता, दोनो अ-
 लग २ विखरीह प्रत्यक्ष भाग होने, परन्तु अनादी
 काल की एकताके कारण न, यद्यपि एक ही दिव
 लहे, जो भी निज २ गुणसे दोनो अलग है, दोनो ही
 २ और (इय पाणी) निजसे एक ही हो जाय है
 लोभी रूप के लक्षण है, दोनो अलग ही है
 स्वभाव है, जो एक ही हो होने के लिये ही
 के प्रभाव से अलग २ होने ही जाने है, दोनो ही
 (सहीर) और बीच, तथा की जोर है, जो
 रूप विखरी है, परन्तु प्रत्यक्ष की चेतनता, और
 लड़का यह गुण, निज २ अलग ही है, जो
 प्रिय दोनो की एकताका भाग है
 एकल प्रतीका स्थान का है
 दोनो ही, अद्वैताना पाणी के लिये ही
 गोता लावे, यह स्थान चतुर्द गुण
 तो है यह स्थान मन वचन का
 से होला है यह स्थान स्थानी वक्त पाणी का लक्षण
 होला ही रहला है एक पाणीसे दूसरे में और

तीसरे में यो योगों का पटला होताही रहताहैं. विचार पटलनेसे ही, पृथक् वितर्क ध्यान इसका नाम हैं. ८, ९, १०, ११, इन गुण स्थानमें मुनीको होता हैं. इस ध्यानसे चित शान्त होजाताहैं, आत्मा अभ्यंत्र द्रष्टीको प्राप्त होता हैं, इन्द्रियों निर्वाकार होती हैं, और मोह का क्षय तथा उपलभ होता हैं.

द्वितीय पत्र-“एकत्व वितर्क”

५ एकत्व वितर्क=इस का विचार पहले पाये से उलट हैं, अर्थात् पहले पाये में पृथक्कर (अलग) वितर्क तर्कों कही, और इसमें एकत्व ऐक्यता रूप वितर्क तर्कों हैं. यह विचार स्वभावीक होता हैं, इस पाये वाले ध्यानीयों का विचार पटता नहीं हैं, एक द्रव्य कों व एक पर्याय को व एक अणुमात्र कों, चिन्तवते, उसीमें एकाग्रता लगावे, मेरु पर स्थिरी भूत हो जावें. यह ध्यान फक्त १२मे गुण स्थान में होता हैं, इस ध्यान में संलग्न हुये पीछे, क्षिणमात्र में मोह कर्म की प्रकृतियों का नाश करे; उसही के साथ ज्ञान वरणिय, दर्शना वर्णिय, और अंचराय, यह तीनही कर्म प्रलय होजाते हैं. अर्थात् चारही वन घाती कर्म क्षपाते हैं, (यहां तेरना गुण स्थान प्राप्त हो

[illegible]

करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते है.

तृतीय पत्र—"सुक्ष्म क्रिया."

३ सुक्ष्म क्रिया—अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्या में प्रवतमे केवल ज्ञानीयों को होता हैं, सुक्ष्म-थोड़ी क्रिया-कर्म की रज रहें, अर्थात् जैसे भुंजा हुआ अना-ज खानेसे पेट तो भरा जाता है. परंतु वाया हुआ उगता नहीं हैं, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासे च-लनादी क्रिया कर सके हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उ-त्पन्न नहीं कर सके है. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगसे सुक्ष्म इयां वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृत्ती होते, अहार, विहार, निहारादी करतें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होने से क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे समय वेदे. और तीसरे समय निर्जरे, (दूर करे) जैसे कांचपे लगी हुई रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती हैं. और अप्रतिपाति कहीये, आया हुआ ज्ञान पीछा जाता नहीं है; अर्थात्, मति आदी चार ज्ञान तो प्रणासों की वृद्धिसे बढ़ते हैं, और हीनतासे चले भी जाते है, और केवल ज्ञान आया हुआ पीछा जाता नहीं है, औ

संयुक्त है। इस लिये दोनों प्रधानों नहीं होती है।

चतुर्थ पत्र-“समुत्थित क्रिया।”

४ समुत्थित क्रिया-अनिर्जनी=पद चोथा पाया

वउत्थ (उत्थ) गुणधर्म से होता है। वउत्थ गुणधर्म

वका नाम अग्राणी कथनी है, अग्राणी-शे मम, वयन,

कायक ध्यान वगैरे होता है, निश्चय, समुत्थित

क्रिया अग्रणी-वत् क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

और लक्ष्य नहीं करता कि कर्मही नहीं होता है।

वा अग्रणी होता है और अग्रणी वा उत्थनी (शे)

पक्ष से ही क्रिया (अग्रणी) प्राप्त होती है, निश्चय

वा उत्थित क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

है, अग्रणी कथनी है, अग्रणी वा उत्थनी (शे)

वा उत्थित क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

है, अग्रणी कथनी है, अग्रणी वा उत्थनी (शे)

वा उत्थित क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

है, अग्रणी कथनी है, अग्रणी वा उत्थनी (शे)

वा उत्थित क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

है, अग्रणी कथनी है, अग्रणी वा उत्थनी (शे)

वा उत्थित क्रिया १८ वीं भाग है, वही पाया

न) भगवंतने फरमाये सो कहते हैं. १ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ विउत्सर्ग=सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित=स्थिरी भूत, और ४ अमोह=मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र "विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता है गाथा—एगो में सासउ अप्पा, नाण दंसण संजउ सेसामें वाहिग भावा, सव्वे संजोग लरकणा. अर्थ—मैं एक हूँ. मेरा दूसरा कोई नहीं है. मैं दूसरे किसीका नहीं हूँ. अर्थात् मुझे किसीभी द्रव्यमें उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य अनादी अनंत हैं. इसको उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ती, किसी भी अन्य द्रव्यमें नहीं है. तैसेही यह कधी उत्पन्न नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है. और कधी नाश नहीं होनेका, क्यों कि अवीन्यासी और अनंत हूँ. लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थात् अशाश्वती हैं, जो उपजाता है, उसका नाशभी है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुई, इसी लिये इसका भी नहीं है. आत्म शाश्वती है. आत्मा-असंग भंग है, अरंग है, सदा एकही चेतन्यता गुणों कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरही नहीं

लता है. क्यों कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही
अलग है.

द्वितिय पत्र-"विउत्सर्ग".

२ विउत्सर्ग-शुद्धध्यानी सदा सर्व सद्गुरुके त्या
गी स्वभावसे ही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फ-
रमाया है-

गाथा-विजहितु पुव्व संजोगं, नसिणेह कहि विकुवेज्जा;
असिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसोहिं मुच्चएं भिरुख
सव्व गंध कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिरुख
सव्वेसु काम जाणसु पास माणो न लिप्पई ताइ ४.

अर्थ-सर्व ग्रन्थ-अर्थात् बद्ध संजोग पूर्वात मात
पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंतर राग द्वेष
का तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनो महा द्वेषका
कारण भाप (मालम) हुवा, जिससे विष्य जहितु दो
नो प्रकारके सन्वन्ध से स्वभाविकही नमत्त्व दूर हो
गया, सन्वन्ध छूट गया. और शब्दादी सर्व काम,
तथा गंधादी सर्व भोग पाश (बन्धन) जैसे मालम हो
नेते, उनसे स्वभाविकही अलित हुये, राग द्वेष रहित
हुये, (पुव्व संजोग) यह पुर्व अनादी अनंत परिभ्रमण
कराने वाले सन्वन्धसे पीछा कदापि कोईनी प्रकारसे



"በሕዝብ ግንኙነት ይገኛል።"

*2014年12月15日 星期二 晴

— 212 —

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

221 264 126 2 1512 1512

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 अथ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रीकृष्ण उवाच ॥
 द्रुपद उवाच ॥ २ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ३ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ४ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ५ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ६ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ७ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ८ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ९ ॥
 अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥ १० ॥

ረዕሳቸው፣ ከዚያም

२५ वाँ प्रश्न :-

सत्यमेव जयते, आर्य (यज्ञियते विष्णुदेव कर्तुं)
अर्थात् अन्तर्द्वेषात्तु यज्ञियते सत्यमेव जयते, की जीक
राष्ट्रिय कृत्ये आर्य अर्थात् की कर्तुं नदी होना है, सत्य
वाक्यान्तर आर्यी और मुक्ति का ज्ञान है. ऐसा स.
अथ सत्यमेव जयते सत्यमेव सत्यमेव सत्यमेव सत्यमेव सत्यमेव
राष्ट्रिय कृत्ये, अथ सत्यमेव जयते सत्यमेव जयते, सत्यमेव
सत्यमेव जयते, अथ सत्यमेव जयते, अथ सत्यमेव जयते, सत्यमेव

अर्थात्—कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा का सधने से संयती हुये, रागादी रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषीराज माहाराज धीराज किसीभी कर्मोदय के योग से कोई किसी प्रकार का दुःख दे, प्राणांत होवें ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें की, मेरी आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अविन्यासी हूँ”

“नैवंछिदनति शस्त्राणी नैवंदहंति पावकं” यह आत्मा शस्त्रसे छेद भेद जाती नहीं है. अग्निमें जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुझे किता भी प्रकार का उपसर्ग कोई भी उपजाने स्मर्य नहीं हूँ, “नर्त्थी जीवस्स नासत्ती” जीवका नाश कदापी हेही नहीं, इस लिये मैं अमर हूँ. यह मनुष्य पशु या देव जिसका नाश कर ने प्रवृत्त हुये हैं, वो तो नाशिवंतकाही नाश करते हैं. आज कल या किसी भी अगमिक काल में, इसका नाश जरूर ही होगा. मैंने क्रोडोपलब्ध किये तो रहे नहीं, ऐसा निश्चय जिन्नकी आत्मा में होने से उन को किसी भी प्रकार की बाधा पीडा दुःख मालुम पडताही नहीं है. यथा द्रष्टान्त जैसे गज सुकुमल मुनिन्दर के सिर (मस्तक) पे खीरे (अग्नीके अङ्गारे) रखन्गि. जिस से तडर करती खोपरी जलने

चतुर्थ पत्र-“अमोह”

४ अमोह-अर्थात् शुक्लध्यानी स्वभाव सेही मोह रहित निर्मोही होते हैं. “मोह बन्धति कर्माणी, निर्मोहो वीमुच्यते” अर्थात्-मोह कर्म बन्ध करता है और निर्मोहपणा कर्म के बन्धन से छुड़ाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्लध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोई भी पदार्थ उनको भाप नहीं होता है.

उत्तराध्येयनजी सुखमें चितमुनीश्वरने कहा है.

गाथा-सर्वं विलं वियं गीयं, सर्वं नष्टं वीडं वियं;

सर्वं आभरण भारा, सर्वे काम दुहा बहा.

अर्थात्-“सर्व गीत-गायन है तो विलाप जैसे हैं,” क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाप्त होनेका स्थान एकही है. [मुख और कान] और दोनोंही राग द्वेषकी प्रणतीसे पूर्ण हैं, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनों तरहका होता है. तैसेही रुदनभी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनों तरहका होता है, यह भाव मोह गीर्ध जीवके मानने उपर है. गीतों मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उद्धवे हुये, चितको

[illegible]

सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिरते हर्ष मानतेहे. वितरागी पुण्य वयार्थ द्रष्टी से देखते हुये विभुपित पे और नन्न पे स्वभाव से ही रागद्वेष रहित मध्यस्थ भवमें रहते हैं. और जितने जन्ममें दुःख है, वे सब काम भोग से ही उत्पन्न होते हैं और जो काम भोग का अर्थ है वोही अनन्त दुःख मय संसार भार को बहाता है—उठाता है, काम भोग की अभीलाषा वालाही दुःख पाताहैं यह सर्व तमाशा प्रत्यक्ष जगत् में दिख रहा है, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा स्वभा से ही सर्व अभीलाषा रहित हो शांतबनें हैं, सर्वथा मोहका नाश होने से वितरागी बने हैं.



तृतीयप्रतिशाखा शुक्लध्यानस्य आलम्बन

सूत्र—नुक्करनणं ज्ञाणस्त चत्तारी आलंबणा पल्लंते तंजाहा खंसी, नुत्ती, अज्जाव, मदव.

अर्थ—शुक्लध्यान ध्याता को चार प्रकारका आधार हैं.

१ क्षमका, २ निर्लोभताका, ३ सरलताका, और ४ नन्नताका.

प्रथम पत्र—'क्षमा'

और अनुमोदना कर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रज-
को अकर्पण करता है, और मलीन होता है. तैसेही वो
उन पुद्गलोंको अकर्पण कर मलीन होते है; जिससे नि-
ज स्वभावका अच्छादन हो, पर स्वभावमें रमण कर,
विभाको प्राप्त होते है. और ज्ञानी कांचके घड़ेकी त-
रह निर्लेप या लुम्बे (विकास रहित) होनेसे वो जं-
गलमें भ्रमते हुये पुद्गल उनके आत्मापे ठेहर नहीं स-
के हैं. क्यों कि वो मनादी त्रियोगकी अशुभ पृवृत्तिसँ
स्वभावेही अलग रहे. निजात्मिक ज्ञानादी गुणमें रमण
करते है, मतलब की, इस जगत् मे अनेक जीव
बोलते है, और अनेक जीव सुणते हैं. उसपे अपन
ध्यान नहीं देते हैं, तो वो पुद्गल अपनको राग द्वेषके
उत्पन्न कर्ता नहीं होतें है, और उन्ही शब्द को आपन
अपनी तर्फ खेचे की यह गाली मुजेही दी की, तुर्त वो
पुद्गल अपनी आत्मा में प्रणम, अपन को द्वेषी बना
देते हैं. अब अपन जरा दीर्घ विचार सँ देखें तो, अ-
पनी निंदा कोइ करताही नहीं हैं; क्योंकि, निंदा हो-
य ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हैं; आ-
त्मा तो ज्ञानादी अनंत गुणों का सागर है, और ज्ञा-
नादी गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हैं, निंदा
तो विषय, कषायादी प्रकृती यों की होती है,

शुक्लध्यानी ने स्वभावसे जडा मूलसे उच्छेदन कर, संतोषमें संस्थित हुये हैं। ज्ञानी ज्ञानसे प्रत्यक्ष जानते हैं की इस जगत्में कोईभी ऐसा पदार्थ नहीं है, की जिसकी मालकी अपने जीवनें नहीं करी, या उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पुद्गलोंका मालकी अनंत वक्त कर आया है, और सब पुद्गलोंका भोगभी अनंत वक्त ले आया है। अर्थात् यह है कि, एक वक्त अहार करके निहार करी हुई वस्तुकों देखते ही, घृणा, दुर्गच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त अहार कर निहार कर आया उन्होंनेकाही पीछा भोगोपभोग करने बहुतसे जीव तरस्त रहे हैं, तडफ रहे हैं, उनकी घृणामे व्याकुल हो रहे हैं, ब्रती आइहीं नहीं हैं, तो अब क्या बिना संतोष किये कदापी ब्रती आवेगी? हा हा! क्या जबर मोहकी छटा! के जीवों विलकूल वे विचार बन रहे हैं, और इस वृत्तमान कालके सरीर के पुद्गल, तथा पहले धारण किये हुये, सब सरीरके पुद्गल जिन्ने जगत्में जीव हैं, उन सबका भक्षण बना है। सब ने अहार कर के निहार कर दिया है। तैतेही जब जीवोंके धारण किये सरीरके पुद्गलोंका, आपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया, जगत् की सब शक्तिके मालक अपन बने, और जगत्के जीवके

दास अपन बने, अंत पयाय रूप इस संसारमें अपन में प्रणम आय, और सर्व संसार पयाय अपन में प्रणमी, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगये, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखिर वैसेके वे से इस लिये से न किसका हुआ, न भग कोइ हुआ, न भुजे कोइने खाया, और न मने किसीको खाया. फलही फलका भक्षण करना है, और छोड़ना है. और वो भग फललोभ ही प्रणमने है. नसेही निर्णमने है, मुझे उससे जरूरी क्या, मैं वैतन्य, यह फलछ, क्या नालिका नामा तरह का रूप पाया कर प्रथक को छोड़ कर मैं अनेक चरित्र करता है. रोना है, हंसना है, बौरे, परंतु प्रथक को उसके संगठ देख सुल टूटा अर्जुनकी भग जरतन है, नसेही यह जगत रूप नालिका में प्रथक है. इसका विविधता देख मुझे उसके विचारों लीन हो, दुःखी बननेकी कुछ न. जरतन नहीं है. यह भग या इससे भी अत्युत्तम भग उछे जगत्को इत्यं से स्वभावही प्रयत्न है, जिससे सहजही भग भगके परिणामी हो सिद्ध ज्ञान सदा मिलिन भगमें भगपति आत्म स्वभावमें समा करते है.

तृतीय पत्र-“आर्यव”

२ अजब-आर्जव-सरलता युक्त. प्रवृत्तनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्र से फरमाया है. की ‘अञ्जुधमं गइ तच्चं, अर्थात् आर्य सरल-आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृत्ती कर सकती हैं, ज्ञानी समझते हैं, की वक्त आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्त ठगाया हुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी ध्रेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी से प्रणाम हुये पदार्थ कुटिलता से भरे हुये हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृत्ताती हुई, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप बनती हैं उसे ‘मायाशल्य’ कहते हैं, मायाशल्य मिथ्या दर्शनका मूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता है. ठांकता है, ‘शल्य’ काँटे को कहते हैं, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुवा काँटा तन्दुरुस्तीकी हरकत करता है, तैसै मायारूप शल्य (काँटा) जिनके हृदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्यानमें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे म्यान में बांकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेही वक्त प्रकृतिका धणीके हृदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

[illegible]

तृतीय पत्र-“आर्यव”

२ अज्जद-आर्जन-सरलता युक्त. प्रवृत्तनेका स्वभाव, शुक्लध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुवगडांग सूत्र में फरमाया है. की ‘अज्जुधमं गइ तच्चं, अर्यान् आर्य सरल-आत्माही धर्म मार्गमें गति प्रवृत्ती कर शकी हैं, ज्ञानी समझते हैं, इसी वक्त आत्माका धणी, अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्त ठगाया हुआ, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरोकी, धेणीयोंमें अनंत वक्त ठगाता है, सर्व पुद्गल परतणी में प्रणमे हुये पदार्थ कुटिलता से भरे हुये हैं. सकर्मि आत्मा उनमें प्रणाम प्रवृत्ताती हुई, उनमेंसे पुद्गलोंका अकर्षण कर उस रूप बनती हैं उसे ‘मायाशल्य’ कहते हैं, मायाशल्य मिथ्या दर्शनका भूल है, मायाशल्यसे आत्माके ज्ञानादी गुणका अच्छादन होता है. ठांकता है, ‘शल्य’ काँटे को कहते हैं, जैसा सरीरके अन्दर रहा हुआ काँटा तन्दुरुस्तीकी हरकत करता है, तैसे मायारूप शल्य (काँटा) जिनके हृदय से नहीं निकला हैं, उनके ध्यानमें दुरस्ती न रहती है, जैसे सीधे न्यान में बाँकी तरवार प्रवेश नहीं करती हैं, तैसेही वक्त प्रकृतिका धणीके हृदयमें शुक्लध्यान प्रवेश नहीं

.....

114

12

生 活 小 叢 書

444

24. 1. 1944

用法 口服。每次 10 滴，每日 3 次。

• • •

Eurytoma

[illegible][illegible]

உறுதிப்படுத்தப்பட்டிருக்கிறது. இதுவே உறுதிப்படுத்தப்பட்டிருக்கிறது.

此後 1943 年 11 月 1 日，在東京舉行的「大東亞戰爭」

~~BZHSB DE WIRTSCHAFTS- UND VERKEHRSMINISTERIUM~~

[illegible][illegible][illegible]

कोइ पण्डित कहें. तो वो चिडता हैं. निरधन को श्री-
मंत कहने से वो बुरा मानता हैं, कहता है क्या हमारा
मस्करी करते हो. वस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण
ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण
तो मेरी अत्मा में हैही नहीं, तो मुजे उन वचन को
सुण अभीमान करने की क्या जरूर हैं. यह मेरी पर-
संस्या नहीं करता हैं, परन्तु मुजे उपदेश करना है,
की, सत्य सील, दया, क्षमा, दी गुण तुम स्विकारो !
शुद्ध ध्यानी सर्वो तन गुण संपन्न हो के भी, उन्हे गुण
का गर्व किंचित मात्र कदापी नहीं होता है, इस लिये
वो सदा निर्भीमानी रहते हैं. तथा विचारना चाहिये
की, जो गुण ग्राम करते हैं, वो तो गुण के करते हैं,
और उसका अभीमान गुणों को तो होताही नहीं हैं,
फिर बीच में मुजे करने की क्या जरूर हैं, संसार में
सुनतें हैं की, अमुक ने अमुक अच्छी वस्तु की सरा-
वणा (परसंस्या) करी जिस्त सें यह बिगड गइ (नि-
जर लग गइ) वस तैसेही गुणानुवाद करने से तूं
पोसायगा तो तेरेइ गुणों का खराबा होगा. ऐसा
ज्ञान के खराबा क्यों करना.

औरभी जो सद्गुणोंकी प्राप्ति हुई है, वो आत्म
सुधारा करने हुंइ है, और उसीसे बीगाडा करना यह

प्रथम पत्र "अपयानुप्रेक्षा"

१ अपयानुप्रेक्षा—संसारमें परिभ्रमण करते हुये जीवको मिथ्यात्व २ अवृत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंबना देने वाले हैं. १ श्री वीतराग दिशा निजात्मके अनुभवमें जो विप्रीत रुची उत्तमें अभीनिवेश (अग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य विषय में, पर सन्धन्धी शुद्ध आत्म तत्त्व से लगाके, संपूर्ण द्रव्योंमें जो विप्रीत अग्रह करे, सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर में आत्म प्रमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न हुवा, जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्राप्त करनेकी रुची होए उसे पलटावे. तथा बाह्य विषय में वृत्तादी धारन नहीं करने रूप जो प्रवृत्ती सो अवृत. ३ अभ्यंतर में प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्मा है उसके अनुभवसे चलाने रूप जो प्रणती, तथा बाह्य विषय में जो मूल और उत्तर गुणने अतीचार उत्पन्न करने वाला जो है, सो प्रमाद ४ अभ्यंतर में परम उपशम मूर्ती केवल ज्ञानादी अनंत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला, निजात्म परमात्मके स्वरूपको क्षोभ के करने वाले, तथा बाह्यमें विषयके सन्धन्धसे क्रुता आदी आवेश रूप जो क्रोधादी है, सो कषाय.

121 12 1.21.
 122 12 1.21.
 123 12 1.21.
 124 12 1.21.
 125 12 1.21.
 126 12 1.21.
 127 12 1.21.
 128 12 1.21.

129 12 1.21.

129 12 1.21.

130 12 1.21.
 131 12 1.21.
 132 12 1.21.
 133 12 1.21.
 134 12 1.21.
 135 12 1.21.
 136 12 1.21.
 137 12 1.21.

138 12 1.21.

139 12 1.21.
 140 12 1.21.
 141 12 1.21.
 142 12 1.21.
 143 12 1.21.
 144 12 1.21.
 145 12 1.21.

बीगाडते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहार में कर्म के कर्ता पुद्गल हैं। जैसे त्रीयोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना है, उस से वे मुख होके, उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णियादी द्रव्य कर्मोंका, तथा उदारिक, वेद्य, और अहारिक यह तीन सरीर, अहार, सरीर, इन्द्र, शाश्वोन्मास, मन. और भाषा, यह पर्याय, इत्यादी योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से, उप चरित असद्भुत वाद्य विषय, घटपटादी का भी येही कर्ता हैं। यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपेक्षा से चैतन्य कर्मका कर्ता हैं, तो इस्तरह की-रागादि विकल्प रूप उदासी से रहित, और क्रिया रहित, ऐसे जीव ने जो रागादी उत्पन्न करने वाले कर्मों का उपारजन किया, उन कर्मों का उदय होने से, अक्रिय निर्मल आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्म का या राग द्वेष का, कर्ता होता है. और जब यह जीव, तीनों योग्यके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्त्वज्ञ एक स्वभाव में परिणमता हैं, तब अनंत ज्ञानादी सुख का, शुद्ध भावों का छद्मस्त अवस्था में भावना रूप विविक्षित, एक देश शुद्ध निश्चय से कर्ता होता है, और मुक्त अवस्था में तो, निश्चय से अनंत ज्ञानादी शुद्ध भावों

१. .

१०२ .

१०३ .

१०४ .

१०५ .

१०६ .

१०७ .

१०८ .

१०९ .

११० .

१११ .

११२ .

११३ .

११४ .

११५ .

११६ .

११७ .

११८ .

११९ .

१२० .

१२१ .

१२२ .

१२३ .

मात्म स्वभावका जो सम्यक अध्यान ज्ञान और क्रिया
उत्तसे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षणका
धारक सुखमृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृत के
भोजनकी अप्राप्ती से, आत्मा इन्द्रिय जनित सुखको
भोगवता हुआ, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्व
स्वभाव उत्पन्न हुये, इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, तो
ग्रहण करने योग्य है शुद्धध्यानके ध्याता उन्हे स्वभाव
सेही ग्रहण करते है, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ
कटु मधु, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल
प्रणतीसे प्रणमा हुआ जो स्वभाव है उसका सहजही
त्याग हो जाता है. शुद्ध आत्मानन्द चैतन्य मय स्व
भावमें सदा रमण करते है.

तृतीय पत्र—“अनंतवृतीयानुप्रेक्षा”

३ अनंत वृतीयानु प्रेक्षा—अनंत संसार में परि
भ्रमण करनेकी जो प्रवृत्ती है. उससे निवृत्तनेका स्व-
भाविक ही विचार होवे, की इस संसार में अनंत पु-
द्गल प्रावृत्तन किये, वो ८ प्रकारसे होता है, १ द्रव्यसे
वादर पुद्गल प्रवृत्तन सो उदात्तिक वैकृत्य, तेजसे, कार-
माण मन, बचन, और शान्धोन्वात्त यह ७ तरह के है,

१. एक दिन एक व्यक्ति ने, उन्हे सबकी सूचना, २
 दूसरे व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ३
 तीसरे व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ४
 चौथे व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ५
 पाँचवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ६
 छठवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ७
 सातवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ८
 आठवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ९
 नौवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १०
 दसवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, ११
 ग्यारहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १२
 बारहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १३
 तेरहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १४
 पंद्रहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १५
 सोलहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १६
 पंद्रहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १७
 सोलहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १८
 पंद्रहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, १९
 सोलहवें व्यक्ति को सूचना दी, उन्हे सबकी सूचना, २०

में यो स्तोकेका काल पूरा करे. ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पश्यें. ७ भावसे वादर पुद्गल प्रावर्तन सो ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पश्यें. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पश्यें, ८ भावसे सुक्ष्म पुद्गल प्रावृत सो पहले एक गुणे काल वर्णके जगत् में जिले पुद्गल हैं, उन सबको स्पश्यें, फिर दुगुणे कालको यों त्री गुणों आवत असंख्यात गुणे काले वर्ण के पुद्गल स्पश्यें यो सर्व काले वर्णके पुद्गल स्पश्यें पीछे, हरे वर्णके पुद्गल कालकी तराह, अनुक्रमें स्पश्यें इसी तरह २० ही तरहके पुद्गलोंको अनुक्रमें स्पश्यें.

यह ८तरह पुद्गल प्रावर्तन करे उसे एक पुद्गल प्रावृतन कहना, ऐसे अनंत पुद्गल प्रावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं; और अपने जीव ने भी किये हैं. ऐसी भव भ्रमणा में भ्रमण करते अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्लध्यानारूढ होने जिले अत्युत्तम समग्रीयों प्राप्ती हुई है. यह उन्हे पुद्गलों के प्रावृतन से निर्मुक्त कर, अखंडित, अचल, निरामय, मोक्षके सुख देने वाली है. ऐसा निश्चय शुक्लध्यानी को स्वभावसेही होता है. और अनंत जीव अनंत पुद्गलों का प्रावृतन करते विभाव रूप विचित्रता को प्राप्त होते हैं यो प्रतिष्ठाया उनकी शुद्ध आत्मा में

कीसँ प्रगमते हैं. जिससे प्रणामोंमें सकल्प विकल्प हो इन वस्तुओंमें प्रेमद्वेष उत्पन्न होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वेष उत्पन्न होता है वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों के प्रमाण ओकीं प्रणामी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन, वधू, भुषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वगैरे सर्व वस्तुओं यही पुद्गलोंसे प्रणामी है. क्षिण २ मे इनका रूपांतर हुवाही रहता है और उस उस प्रमाणों जीवोंकी प्रणतीमें फेर होता है, प्रणतीमें राग द्वेष रूप चमकके भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको अकर्पण कर गुरु (भारी) बनता है, और उस भारी पणनेके योग्यसे उच्च जो मोक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं होता है, यह संसारमें रहनेका मुख्य कारण अनादी अनंत है, यह सब पुद्गलोंकी प्रणती स्वभावका गुण है, उसमे चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण कर दुःखी हुवा, विप्रयास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान शुक्लध्यानी को होता है, जिस से सर्व पुद्गलों ऊपर से राग द्वेष निर्वृत होने से, ज्ञानादी गुण प्रगट होते हैं, जिस से निजगुण की पहचान हुई, की मेरे आत्म गुण, अखंड है, अविनाशी हैं, सदाएकही रूपमें रहने वाले चैतनीक गुण युक्त हैं, अगरू लघु है, न वो कधी आके लगे, न वो कधी विछडे, आनादी से निज

